प्रथम संस्करण १०००

दिसम्बर, १९५१

मूल्य—दो रुपये

— स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर —

' तुम्हारा यात्रा-वर्णन शास्त्रिक-पथ में नहीं चलता, भौगोलिक-पथ पर नहीं चलता, वह चलता है मनुष्य-पथ पर। कितनी शताब्दियों से दुःसाध्य साधनरत मनुष्य का दुर्गम यात्रा का प्रयास अटूट चला जा रहा है—यह तीर्थयात्रा उसी का प्रतीक है। कभी तुम भी उसी के आकर्षण में चले थे ये नाना प्रदेशों के हैं, नाना घरों के हैं, ये बहुत विचित्र हैं किन्तु फिर भी एक हैं—इनके साथ-साथ चलते हैं सुख और दुःख, आशा और आशङ्का, जीवन और मृत्यु का घात-संघात—इसी युग-युगान्तर-पथ के पथिक मानव-चित्त ने अपनी अश्रान्त उत्सुकता के स्पर्श का संचार किया है तुम्हारे वर्णन में—उसका कौतुक और कौतूहल पाठक को स्थिर नहीं रहने देता।

महाप्रस्थान के पथ पर

उपक्रमणिका

मन का आदमी दुनिया में मिलता नहीं, आदमी का मन इसी से संगीहीन है। असल में हम सब अकेले हैं। मनुष्य का मनुष्य के साथ मिलन होता है बाहरी प्रयोजन के लिए, बन्धुत्व के प्रयोजन के लिए, सृष्टि के प्रयोजन के लिए, स्वार्थ के प्रयोजन के लिए।

उस दिन कम्बल, झोला, लोटा और लाठी लेकर जब एकदम अकेले हिमालय की यात्रा के उद्देश्य के लिए तैयार हुआ, कोई संगी नहीं मिला, उस दिन किसी के ऊपर अभिमान नहीं किया, निरासक्त निर्लिप्त मनुष्य निरुद्देश्य होकर चला।

वैशाख के प्रारम्भ की चिता चारों ओर जल रही है, समग्र आर्यावर्त्त सूर्यदेव के अभिशाप की अग्निवृष्टि से गतिहीन हो गया है, मैदान धू-धू कर रहा है, सारा आकाश बादलों के लिए आकुल है, ऐसे दिन काशी से हरिद्वार की ओर चला। जब हम स्थिर, सीमाबद्ध, कूप-मण्डूक, नगर-सभ्यता के जुए को कन्धे पर लेकर, आँखों पर पट्टी बाँध कर घूमते हैं, तब हम यह नहीं समझ पाते कि इसके बाहर उन्मुक्त जगत् है, उदार जीवन है, प्रतिदिन की लाभ-क्षति तथा संकीर्ण जीवन की तुच्छता-क्षुद्रता के पीछे एक परम आह्वान है, इस बात को हम भूल जाते हैं। चारों ओर जिस तरह झाड़-झंखाड़ जमता है, उसी तरह मनुष्य भी जुटते हैं, लेकिन जिस दिन पथ की पुकार सुनाई देती है, जिस दिन दूर की विकल वंशी बजती है, उस दिन सब छोड़-छाड़कर अकेले-अकेले ही चलना पड़ता है, उस समय और अपेक्षा नहीं, पीछे देखना नहीं।

फैजाबाद पार हुआ, पार हुआ लखनऊ, पीछे रह गई, दौड़ती गाड़ी भागी जा रही थी। मेरी इस यात्रा के पथ में कोई पद्धति नहीं, कोई आयोजन नहीं था, पर जिस तरह विशृङ्खल थी उसी प्रकार

आकस्मिक भी थी। शेष रात्रि में लक्सर पार कर जब हरिद्वार आकर पहुँचा, उस समय देखा कि यह बिल्कुल ही नया राज्य है! ठंडी हवा से सारा शरीर काँप गया है, इतना ठंडा है कि हाथ-पाँव ठिठुर जाते हैं। गरमी से मुक्ति पाकर आनन्द हुआ, शरीर में आया उत्साह और मिली गति की चंचलता। शेष रात्रि का अन्धकार, सिर के ऊपर नक्षत्र-खचित काला आकाश, आस-पास में कृष्णकाय प्रहरियों की तरह पहाड़ों की श्रेणियाँ, मधुर शीतल वायु—इन सबके बीच में होकर मार्ग को खोजता-खोजता धर्मशाला की ओर चला।

हिमालय के जितने प्रवेश-पथ हैं उनमें हरिद्वार सर्वश्रेष्ठ और सुगम है। यहाँ केवल तीन ऋतुएँ होती हैं—वर्षा, शीत और वसन्त। निकट में ही गंगा की कलस्वनी तथा उपल-मुखरा नील धारा है। नदी के किनारे-किनारे सन्यासियों के अड्डे और आसन हैं, धूनी जल रही है, गाँजा पिया जा रहा है, वेद, गीता और तुलसीदास की आलोचना हो रही है। ब्रह्मकुण्ड में स्नान, कुशावर्त में श्राद्ध और तर्पण—कहीं भी चंचलता नहीं, जीवन-संग्राम नहीं, निर्विकार और निर्लिप्त। इस समय यात्रियों की बड़ी भीड़ है, सबका ही पथ बदरीनारायण की ओर है, [illegible] लोग मुख से उत्साह [illegible] रहा है, सब यात्रा के आयोजन में [illegible] [illegible] तथा कुलियों [illegible] कच-कच हो रही है। [illegible] बाजार में शीतकालीन अनाज तथा तर- [illegible] [illegible] तरह, भोलागिरि [illegible] [illegible] तथा [illegible]

निरुद्दिष्ट पर्वत श्रेणियाँ, इनका आरम्भ कहाँ से होता है और अन्त कहाँ होता है—यह सब समझने का कोई उपाय नहीं है: बद्रीनाथ किस दिशा की ओर है?—केवल मेघों के पार मेघ, पहाड़ों के पार पहाड़—उत्तुङ्ग, कठिन और निर्दय। वास्तव में मैं 'नर्वस', भयचकित तथा आरामप्रिय हूँ, दुस्साहस है किन्तु साथ ही साध्य नहीं—इस बात को इस तरह मैं आगे नहीं समझ सका। मन में ख्याल आया—अभी भी समय है, वापस हो जाऊँ किंवा किसी आश्रम में छिप कर दो महीने बाद स्वदेश को वापस लौटकर कह दूँगा कि घूमकर आ गया! इसी बीच में सिरे पर लोहे से मढ़ी हुई एक लाठी खरीदी, क्रेपसोल कैनवेस के जूते खरीदे। ईसबगोल, मिश्री, भोजन के मसाले, हड़-बहेड़ा आँवला, और आमाशय की औषधियों से कन्धे का झोला भारी हो गया यात्रियों के पास से मुक्त रूप में उत्साह और उद्दीपन मिल रहा है, कितना भय, कितनी दुश्चिन्ता और कितनी सान्त्वना है। क्या कहें, पथ की विपत्तियों और कष्टों की कथा सुनकर छाती पर साँप लोटने लगता है, कैसे वापस जाऊँ, देश से यदि एक विपद्सूचक जरूरी तार आ जावे तो बच जाऊँ, इससे तो जेल जाना अच्छा था। एक बार मन में भी आया कि मार्ग के किनारे खड़े होकर दो बार 'वन्देमातरम्' ही बोल दूँ जिससे गिरफ्तार हो जाऊँ किन्तु मुख में और आवाज ही नहीं, कण्ठ में शक्ति नहीं, हृदय में साहस नहीं, केवल निरुपाय पश्चात्ताप से दूर रेलवे लाइन की ओर एक बार देखा।

नहीं लौट पड़ने का अब उपाय नहीं है। सगा नहीं, बन्धु नहीं, परिचित भी कोई नहीं। यात्रियों में से प्राय सभी संसार से सम्बन्ध छोड़कर आये हैं शायद वापस लौटने की आशा ही वे नहीं करते, इनका ज्ञान पूरा हो चुका है इनकी दृष्टि में जीवन का मूल्य और कुछ नहीं [illegible] दधीचि बनकर देह दान करके, एक दिन [illegible] वे शान्तिशाली होंगे। इसी धर्मशाला में तीन बंगाली यात्रियों का एक दल बद्रीनाथ को चल रहा है। उनके साथ केवल एक पुरुष है और सभी वृद्धा तथा स्त्री हैं। स्त्रियों में [illegible] और [illegible] का [illegible] पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता है—आश्चर्य [illegible] एक सत्य है, किन्तु इस बात को [illegible] उनके साथ [illegible] पुरुष का नाम [illegible] था [illegible] था और इनका सिर घुटा हुआ था [illegible] सिर पर गेरुआ रंग की [illegible]

पर कुर्ता, चादर, गञ्जी गेरुए से ही रगे थे—ऐसा जान पड़ता था कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। उसके साथ मे उसकी माता थी और साथ मे चलनेवाली करीब बीस स्त्रियाँ। सहज ही मे बातचीत होने लगी। स्वामीजी बोले—आपके जाने का तो कोई कारण नहीं है! यह दुर्गम पथ...कितनी विपत्ति . आप घर को लौट जाइये।

मैने कहा—यह क्या, वापस चला जाऊँ? मैने भी तो गेरुए से कपडे व चादर रँग लिए हैं, स्वामीजी!

स्वामीजी मुख की ओर ताककर, मानो कुछ देखकर हँसे। बोले—सन्यास ले रहे है? वह तो आपके लिए नहीं है! मै समझता हूँ कि आपका वापस लौट जाना ही अच्छा है, यह बड़ा कठिन पथ है। इसके सिवा गेरुए वस्त्र धारण करने से ही तो संन्यासी होने के लिए तो उसका मन्त्र है, शोधन है, नाना क्रिया-कलाप .आपके कारण हम बदनाम होते हैं, लोग हम पर विश्वास करना नहीं चाहते!

और दो-चार बातो का उपदेश देकर वे चले गये। उनको यह नहीं जतला सका कि मै सारे रास्ते आगे चलते-चलते हुए भी पीछे रह जाने की ही चेष्टा कर रहा हूँ।

दो दिन तक पथ मे, बाजार मे, नदी के किनारे तथा मन्दिर-मन्दिर मे घूमता रहा। मन की बात किसको बतलाऊँ?

बाहर उत्साह प्रकट कर रहा हूँ, जाने का आयोजन कर रहा हूँ, किन्तु भीतर ही भीतर मेरी जरा भी इच्छा नहीं—इस बात पर आज कौन विश्वास करेगा? हाय, तब भी जाना होगा मुझको, बिना देखे नहीं। एक दिन नहीं कह सकता, उन्हे मेरी बड़ी लालसा है!

तीसरे दिन आनन्द से यात्रा। जिनके साथ धर्मशाला मे रहने से थोड़ा परिचय हुआ था उनसे म्लान हँसी के साथ विदा ली। धर्मशाला का मैनेजर एक बंगाली छोकरा था, नाम—चाटुर्ज्ये गाने-बजाने, अच्छे व्यवहार और अपनी मीठी वाणी से अपने सब यात्रियों को मुग्ध कर लिया था। उसने सकरुण आँखों से विदा दी। पथ मे उतर आया। कन्धे पर एक तरफ रस्सी से कम्बल बँधा था, और एक तरफ झोला, हाथ मे लाठी और रस्सी से बँधा लोटा, पाँवों मे कैनवेस के नये जूते। आँखों मे [illegible] दृष्टि, हृदय मे [illegible], आत्मग्लानि, प्राणों मे भय, [illegible] रास्ते पर चला। बाजार पार कर [illegible] पाई जाती है। [illegible] पीकर पानी मे [illegible]

हैं, कहीं कहीं सन्यासियों के अड्डे हैं, छोटे-छोटे देवालय हैं, नदी के उस पार पहाड हैं, नीचे बबूल के घने जगल हैं। गाड़ी तेज चली जा रही है। बाँई ओर रेल की लाइन देहरादून की ओर गई है, छोटे-छोटे स्टेशन मिल रहे हैं जो जन-शून्य से हैं, दक्षिण में ऋषीकेश की ओर रास्ता गया है। रास्ते में जाते समय भीमगोड़ा चट्टी मिली। यहाँ एक गुफा है, पूर्वकाल में भीम के अश्वखुराघात से इस पर भारी चोट पड़ी थी। उसके बाद सत्यनारायण का मन्दिर मिला। मन्दिर के पास काली कंबलीवाले की सदाव्रत चट्टी है। जो चिह्नित साधु-सन्यासी हैं, वे मुफ्त मे यहाँ आहार और आश्रय पाते हैं। गाड़ी कई मिनट के लिए रुकी तो ब्रह्मचारी उतरकर मन्दिर का दर्शन कर आये। देव, द्विज और संन्यासी मे उनकी अविचलित भक्ति थी।

दिन का अवसान हो गया है, पश्चिम दिशा की लाल रेखा इस बीच मे म्लान हो चुकी है, वन की छाया और पर्वतों के अन्धकार मे झिल्ली-रव जाग उठा है, गाडी ऋषीकेश की एक धर्मशाला के निकट आकर रुक गई। सब उतर गये। इस समय थोड़ा निर्भय हो गया। पास ही मे काली कम्बलीवाले की विराट धर्मशाला है, यहीं उनका प्रधान कार्यालय है। यह कम्बलीवाले एक साधु थे। अख्यात और नगण्य रूप मे यह साधु बद्रीनाथ गये थे, सबल था केवल एक काला कम्बल। रास्ते में बहुत दु:ख-कष्ट मिला था, उपवास मे दिन काटे थे क्योंकि दरिद्र यात्रियों के पास से दरिद्र साधु की भिक्षा भी नहीं जुट पाती थी, किन्तु इसी महापुरुष ने, एक दिन अपने परिश्रम और अपनी चेष्टा से, हृदय के एकान्तिक आग्रह से देश-देश मे भिक्षा संग्रह कर निरुपाय साधु-सन्यासियों के दु:ख को दूर किया। उनकी कृपा ही से इस समय रास्ते मे स्थान-स्थान पर सदाव्रत की व्यवस्था हुई है। आज वह इस ससार मे कहो नही हैं, किन्तु असंख्य नि:संबल सन्यासियों का नतमस्तक प्रणाम निरन्तर उनके चरणों मे पहुँचता रहेगा।

ब्रह्मचारी बोले—मुझे भी तो सदाव्रत लेना होगा दादा! गरीब प्राणी हूँ, इसी आशा से तो आया हूँ। आप दया करके मेरी ओर से प्रार्थना कर दीजिये।

भीतर भीड़ थी, कोलाहल था, उसी को पार करता हुआ गद्दी के स[ामने] जाकर खड़ा हुआ। हिसाब-पत्र लेकर गद्दी का मैनेजर और क्लर्क हैं। आस-पास मे प्राय: पच्चीस-तीस साधु-भिक्षुक हाथ जोडकर [...] नेत्रों से खड़े हैं। कोई-कोई प्रार्थना अस्वीकृत हो जाने पर अपनी-

अपनी व्यवस्था का वर्णन कर निवेदन कर रहे हैं. कोई बद्रीनारायण की शपथ लेकर कह रहे हैं कि वे वास्तव मे सन्यासी ही हैं, दूसरे के मत्थे खाने-पीने का खर्च मढकर भ्रमण का शौक लेकर वे नही आये हैं, वे तो वास्तव मे नितांत निरुपाय तीर्थ-यात्री हैं। यह सब दृश्य देखकर ब्रह्मचारी का मुह सूख गया और जब उसने सचमुच ही यह सुना कि वह भी सदाव्रत का टिकट नही पा सकेगा, उस समय उसने वही पडे-पडे कहा—क्या होगा दादा. मै तो बहुत आशा करके मैने तो यह सुना था कि जो आता है वही टिकट पाता है!

इस बात को वह नही जानता था कि पृथ्वी मे इतनी बडी दान-शीलता कही भी नही है। दान के सम्बन्ध मे इतनी कड़ाई होने से ही तो दान का इतना मूल्य है!

अतएव निराश होकर ब्रह्मचारी को लौटना पडा, उसका चेहरा देखकर डर लगने लगा. रास्ते मे जो आनन्द और उत्साह उसमे था, वह बिल्कुल मिट गया. कण्ठ हो गया रुद्ध, सर्वहारा की तरह हताश—म्लान आँखो से देखकर वह बोला—तो लौट जाऊँ सामान्य पॉच-सात रुपए लेकर इतने दिनो का रास्ता तब तो लौट ही जाऊँ!

मन मे बहुत बुरा लगा। मैने कहा—लौट जाने के सिवा उपाय ही क्या है, सत्य ही तो है कि और उपवास किये रास्ता नही पार किया जा सकता।

परमुखापेक्षी का चेहरा ही ऐसा होता है। जब वह आशा से प्रज्वलित होता है तब तो दावानल बन जाता है और जब बुझता है एकदम राख का ढेर। ब्रह्मचारी जिस समय बिलकुल बालक की तरह सग-सग चलने लगा, उस समय मैने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि भगवान मे उसका पूर्ण विश्वास शिथिल हो गया है। सदाव्रत न मिलने पर उसकी दरिद्रता का सत्य रूप मेरी आँखो के आगे विषम रूप से प्रगट हो गया।

नीलधारा के किनारे आकर बैठ गया। अन्धकारपूर्ण नदी, तरग-सकुल जल के ऊपर नक्षत्रो का प्रकाश चमक रहा है, भयकर और रहस्यमय, पर्वत के गम्भीर गह्वर से काला जल वन्य-जन्तु की भॉति चीत्कार करके चला आ रहा है, जल-प्रवाह के अविश्रान्त शब्द से चारो दिशाऍ मुखरित हो रही है। किनारे पर, बहुत दूर तक कही-कही धूनी जलाकर सन्यासी आसन डाले हुए हैं। एक निरुद्वेग, निविड़ प्रशान्ति है। तपस्या के लिए निश्चय ही उपयुक्त स्थान है।

'मै काशी से आ रहा हू। यह परिव्राजक है।' उन महाशय की बडी दाढ़ी थी, यात्रियों की तरह सिर पर वाल थे, गेरुआ-वस्त्र पहने थे, शरीर मे एक गरम वेस्ट-कोट था, पाँव मे पहरेदारो की तरह काली वनात की पट्टियाँ वंधी थीं। छोटी एक चिलम मे तम्बाकू भरा हुआ था।

उन्होने पूछा—आप ?

मैने कहा—ब्राह्मण, आहा हा, क्या करेंगे ? मै उम्र मे बहुत छोटा हूं।

'इससे क्या, ब्राह्मण-सन्तान तो हो,' यह कहकर उन्होने जबर्दस्ती मेरे पाँवो की धूल माथे पर रख ली। बोले, 'बुड्ढा आदमी हूँ, इतने बाल-बच्चे को लेकर इस दुर्गम पथ पर जरा दया कर देखिये तो। मार्ग के सगी।' झोली से उन्होने दो बीड़ी हम लोगो के लिए बाहर निकाली।

उनके साथ बातचीत करके फिर बाहर आया। प्रकाश जलाने का उपाय नही था। अन्धकार मे कम्बल फैलाकर दोनो जने पास-पास सो रहे। ब्रह्मचारी जँभाई लेकर अपने अभ्यासानुसार बोल उठा, 'ओम् नमो नारायण ! ओम् तत्सत् !'

मैने कहा—हम तो कोई रास्ता पहिचानते नहीं, किस दिशा की ओर जाएँगे ?

'एक ही रास्ता है, दूसरा नही। पूर्ण विश्वास लेकर चलेंगे दादा, डर किस बात का ? ओम् नमो नारायण।'

तरह-तरह की बातचीत होने लगी। अनेक पथो का इतिहास, कितने ही देशो तथा कितने ही राज्यो की कथा। ब्रह्मचारी बहुत दिनो से परिव्राजक-जीवन बिता रहा है, किन्तु विपुल अभिज्ञता होते हुए भी उसको आत्मोपलब्धि नही हो सकी। उसने जीवन को देखा है गीता मे, वेदो के कई श्लोको मे, महाभारत और रामायण की कई घटनाओ मे, भगवान के प्रति तथाकथित पूर्ण विश्वास मे। धर्म की आलोचना मे उसके हृदयवेग का परिचय पाया जाता है, धर्मज्ञता और ज्ञान का प्रकाश नही पाया जाता। ससार मे सब कुछ सहज ही विसर्जन कर चुका है, नही छोड़ी है तो केवल आशा। आशा लेकर ही वह बचा हुआ है, आशा के बल पर ही उसका तीर्थ-पर्यटन है और आशा मे ही उसका धर्म-जीवन है।

तन्द्राच्छन्न नेत्रो से पडे-पड़े ही उसकी कथा सुन रहा था। वह एक

उच्छ्वास-सर्वस्व लोगों को भी मैं जानता हूँ; अतः अपने को भी उनसे अलग होते नहीं देख सकता। आज सभी अच्छे मालूम हो रहे हैं। जो बन्धु हैं, जो विरूप हैं, जिनको छोड़ आया हूँ, जो जन्मभूमि मेरे जीवन का आधार है, समाज और बस्ती अप्रसिद्ध और अनाहत, कोई भी तो अपना-पराया नहीं। आज अपना-पराया नहीं। आज मेरा सन्यासी का वेश है, किन्तु वह केवल परिच्छेद है, केवल बाह्य आवरण है, देश की बात सोचते ही, इस समय शरीर के लाखों स्नायु झनझन करके बज उठते हैं। सहज ही में उस दिन जिस ममता का आश्रय छोड़कर चल दिये, उदासीन होकर जिनसे विदा लेकर चले, आज इस सन्यास के कृत्रिम आवरण के नीचे विच्छेद-कातर हृदय बोलता है, 'तुम लोग हमें भूल मत जाना, हम हैं बचे हैं।'

एक दिन सभी मरेंगे किन्तु निश्चिन्त होकर मिट जाने की तरह सान्त्वनाहीन मृत्यु और कुछ नहीं। हम निरुपाय, दुर्बल, भाग्य के खिलौने फिर भी हम निरन्तर बचे रहना ही चाहते हैं। यही बचने की चेष्टा समस्त पृथ्वी पर आवहमान काल से चल रही है। कोई बचना है नव-जीवन [illegible]

चेहरा होता है, पद्मासन की तरह उस पर बैठा जाता है. इससे मार्ग का परिश्रम तो बच जाता है, किन्तु आराम नहीं मिलता। पहले-पहले तो यात्रियों के दलों में उत्साह होता है, पर चार-छः दिन बाद उनकी चाल मन्द हो जाती है। कोई लँगड़ा कर चलने लगता है, कोई पीछे रह जाता है कोई बीमार हो जाता है, किसी को चलने से घृणा हो जाती है, और कोई वापस चला जाता है। जिसे पहले स्वस्थ, सबल, प्रसन्नचित्त और मिष्टभाषी देखा था—कई दिनों के बाद उसके शरीर को दुबला-पतला, धूल और धूप से मलिन देखा, करुण-कातर दृष्टि है। शायद चलने में उनके पाँवों में दर्द रहता है, मुख और आँखों पर अस्वाभाविक वितृष्णा है और अत्यन्त चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया है। पास खड़े होने से डर लगता है। यात्रियों की यह अवस्था कुली समझते हैं इसलिए जो बेकार कुली होते हैं, उनकी पीठ पर खाली कारडी झूलती रहती है, कई दिनों तक धैर्यपूर्वक वे यात्रियों के झुण्डों के पीछे-पीछे चलते हैं। फिर देखा जाता है, धीरे-धीरे एक-एक करके उनके खरीदार मिल जाते हैं, तब यात्रियों की गरज समझकर कुली बहुत किराया माँगते हैं, और आखिर लाचार होकर यात्रियों को देना ही पड़ता है। गर्ज बुरी बला है। इस रास्ते में सभ्य-समाज की तरह चोरी-डकैती आदि कुछ नहीं होती, इस दृष्टि से इस तरफ यात्री निरापद होता है। कुली विश्वासी, नम्र और सीधे-सादे होते हैं। पैसे के लिए उनमें मोह होता है, किन्तु उसके लिए दुष्प्रवृत्ति नहीं होती। वे विवाद करेंगे पर धूर्तता नहीं करेंगे। वे गरीब होते हैं, पर गरीबी उनके हृदय को कलुषित नहीं करती। वे वित्तहीन हैं, पर चित्तहीन नहीं।

उत्तराखण्ड की गंगा के किनारे-किनारे हमारा मार्ग है। इस तरफ ब्रिटिश गढ़वाल, बाईं तरफ नदी और उस पार टिहरी-गढ़वाल है। कर देनेवाला राज्य है और नाममात्र के लिए स्वाधीन है। गंगा, अलकनन्दा और मन्दाकिनी ही साधारणतः इस राज्य की निर्दिष्ट सीमाएँ हैं। गढ़वालियों के गाँव कहीं-कहीं पर दो मील तक ऊँचाई पर स्थित हैं। ग्रामीण लोग सभी खाने-पीने वाले कहे जा सकते हैं। सभी किसान हैं। पहाड़ी ढाल जमीन में आरी के दाँतों की तरह खेत काट-काट करके वे एक आश्चर्यजनक-उपाय से कृषि उत्पन्न करते हैं। गेहूँ, आलू, अरहर, गोभी सरसों आदि पैदा हो जाती है। उन में जो युवा हैं अथवा बोझ वहन करने में समर्थ वृद्ध और प्रौढ़ चैत्र महीने के अन्त में नीचे मार्गों पर उतर आते हैं—हरिद्वार जाकर यात्रियों को लेने और बोझा लेकर

मुँह में तकलीफ होने लगती है—दूर पर चढ़ाई का मार्ग है, यह खबर पाकर हम डरकर एक-दूसरे के मुख की तरफ देखने लगते हैं। आनेवाली विपत्ति मानो रास्ते में हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

उस दिन आकाश सवेरे बादलों से घिरा हुआ था। नयार नदी और गंगा के संगम में हू-हू स्वर से हवा चल रही थी। एक नूतन राज्य पार कर गये। आज सुबह तक बत्तीस मील मार्ग तय कर लिया। एक-सी भूमि पर इतना मार्ग तय करने में हमें मामूली परिश्रम ही करना पड़ता, किन्तु ये तो पहाड़ थे—दुर्गम, दुरारोह और पत्थरों से भरे हुए। इस मार्ग का अन्त नहीं, विच्छेद नहीं—एक-सा यन्त्रणादायक मार्ग है। नयार नदी का पुल पार करने पर व्यास गंगा के किनारे एक चट्टी पर हम लोग आ पहुँचे। पिछले दिन की शाम तक कितनी ही चट्टियाँ पार कर चुके थे। नाई मुहाना, विजनी, बान्दर, शेमालू, कान्दि इत्यादि। बान्दर चट्टी में उस दिन रात को एक घटना हुई। निद्रित अवस्था में हम दोनों बन्धुओं का एक भयानक पहाड़ी साँप ने सस्नेह आलिंगन किया, किन्तु कैसा सौभाग्य कि उसने चुम्बन नहीं लिया। लाठी की चोट से साँप तो मर गया, पर इसी सूत्र में एक पण्डितजी के साथ सम्बन्ध हो गया। पंडित का घर मध्य-भारत के बुरहानपुर जिले में है। अकेली जान और पक्के तीर्थ-यात्री हैं। करीब एक वर्ष से वह परिव्राजक होकर सब तीर्थों में घूम रहे हैं। संन्यासी योगी का वेश, इसीलिए रेलवे-कम्पनी वाले उनके पास से कभी भाड़ा अदा नहीं कर पाये। न वसूल कर सकने का कारण भी था, उनके चतुर और मधुर आलाप से वन के पशु-पक्षी भी मुग्ध हो जाते थे। उनकी अवस्था पैंतालीस से पैंसठ वर्ष के भीतर होगी। दुबले-पतले पर कद में बड़े, कई दाँत नहीं, चातुर्य और भगवद्भक्ति की सम्मिलित दीप्ति से दोनों आँखें उज्ज्वल, गले में चार-पाँच रुद्राक्ष की माला पड़ी थी, जप के लिए बैठते तो गोमुखी में हाथ घुमाते, मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाते, और मुँह से 'सीताराम' शब्द का उच्चारण करते थे। इस बीच हमारे दल में एक और वृद्धि हो गई, कालीघाट के वे यात्री आकर मिल गये। लम्बे बाल, मोजा पहिनेवाले दादा आकर पहुँच गये हैं, उनके पीछे है एक बुढ़िया। बुढ़िया का उत्साह, धैर्य और सहनशीलता देखकर विस्मय होता है।

चारु की मा की कमर झुक गई है, कुबड़ी होकर चल रही है, जीर्ण-शीर्ण शरीर, पर कालीघाट में दूध देकर गुजर करती है [illegible]

जाऊँ। दो-चार लोगो को वापस जाते देखा था : मेरा जाना ही ऐसा क्या अपराध है। अब भी समय है : अब भी तीन दिन के बाद जन्म-भूमि का स्पर्श कर सकता हूँ। मार्ग अब भी बहुत लम्बा तय नहीं हुआ है, इसके बाद पश्चात्ताप का अन्त नही होगा। वापस चले जाने पर लोक-लज्जा का डर है, किन्तु इस सामान्य लोक-लज्जा के लिए क्या इस प्रकार जीवन की बलि दे दूँ ? नहीं, मृत्यु से मुझे बड़ा भय लगता है।

'बाबा, तुम इतनी कम उम्र मे तीर्थ करने के लिए क्यो आये ?'

'तीर्थ करने तो मै आया नही।' मैंने कहा।

'तो फिर ? इस दुर्गम मार्ग मे क्यो आये ? ओहो यह लड़का ?'

'यो ही घूमने चला आया बूढी माँ !'

'घूमने आये हो ! ओ हो क्या हो गया, घूमने के लिए और कोई जगह नही मिली ? मालूम होता है विवाह नही हुआ है ?'

मैंने हँसकर कहा—विवाह होने पर क्या कोई यहा नही आता ?

एक आदमी बोला—आहा, यह तो बाबा बद्रीनाथ की दया है। जिसको अपनी ओर खीचते हैं वही

मै बोला—जो बाबा की दया नही चाहता, वह यहाँ क्यो आता है बूढी माँ ?

बुढ़िया आश्चर्य से आँखें कपाल पर चढाकर बोली – जो ईश्वर की दया नही चाहता, ऐसा मनुष्य वह तो नास्तिक होगा भाई !

कुछ मील चलने पर कानाफूँसी सुनाई पड़ी, मेरे बराबर नास्तिक और कोई इस दुनिया मे नही है। निन्दा होने लगी, व्यंग्य-विद्रूप होने लगा, मेरे प्रति बुढ़िया की श्रद्धा और स्नेह विलुप्त हो गया रास्ते में मेरे जैसे अहंकारी नास्तिक का देखना महापाप माना जाने लगा। सिर झुकाकर उनकी बातें सुन लेने के सिवा और कोई चारा नही था।

'और कुछ नही, समझलो ये सब बच्चो की बातें हैं। पागल भी तो क्या इस तरह ऊटपटाँग नहीं बकता—' बाबा बोले।

'क्या कहा मैंने तो कुछ सुन नही पाया '

'न सुनना ही अच्छा हुआ। कहते हैं, ऐसे समय कान मे उंगली डाल लेना अच्छा—बच्चो की बातो पर ध्यान नही देना चाहिये—वे भारी पुण्य करने आये हैं '

उस दिन काफी लम्बा मार्ग तय करके हम शाम को देवप्रयाग

है, कोई अपने घर चिट्ठी लिखने बैठा है, किसी के जामाता ने आने को मना किया था, किसी के पाँव में मक्खी के काटने तथा खुजलाने से घाव हो गया है उसी की यन्त्रणा और कातरोक्ति—इसी तरह की नाना जटिल समस्याएं। ब्राह्मणी मा के गले की आवाज बीच-बीच मे इन जटिलताओ को तीर के नोक की तरह बेधती हुई उठ रही है।

बडे प्रयत्न और आग्रह से अपना छोटा हुक्का भरकर दादा अँधेरे मे दियासलाई आगे बढ़ाकर बोले—जलाओ दादा! बिना तुम्हारे आनन्द नही। मालूम होता है कि सोंपी सूख गई है।

गन्दे पानी मे एक चिथडे को भिगोकर उन्होने उसे हुक्के की तली मे जड़ लिया।

ब्रह्मचारी अनुगत भक्ति की तरह प्रसाद ग्रहण करने धीरे-धीरे उठ बैठा। सोने से पहले बिना दो कश लिये उसे नींद ही नहीं आती थी।

हुक्का पीते-पीते दादा बोले—गोपाल घोष आदमी को पहचानता है, इसीलिए ऐसे-वैसे आदमियो के साथ वह सम्बन्ध नहीं रखता। दादा ' तुम्हे मार्ग मे अच्छा पाया, तुम्हारी तरह मनुष्य . कहकर उसने हुक्का छोड दिया, फिर वह सिर सिकोड़कर सो रहा।

ब्रह्मचारी उसकी बात लेकर बोल उठा—इतना बडा धार्मिक है, समझे गोपाल दादा, समस्त-पथ मुझे खिलाते-खिलाते . दादा, आपका ऋण मैं इस जीवन में .

अर्थात, गुरु और शिष्य दोनो ही उस समय गहरे नशे में मस्त थे।

मै बोला—ब्रह्मचारी, निन्दा और प्रशसा अब मेरे सामने एक ही वस्तु हैं, किन्तु आपके पक्ष में ये सब अर्थहीन हैं।

'क्या दादा ?'

'यही आपका कृतज्ञता प्रकाश करना। संन्यासी का सबसे बड़ा लक्षण निर्विकार होना है।'

रात मे देर तक जागकर ब्रह्मचारी के साथ बात-चीत होने लगी। उसके मन की कितनी बातें, कितनी कल्पनाऐं! वह बोला—भगवान में पूर्ण विश्वास न होने से मठ जिस दिन खोलूंगा उस दिन आप उसका भार लेंगे दादा। मठ मैं स्थापित करूंगा ही। अब कुछ दिन मेरी भिक्षावृत्ति चलेगी, जरूरत पे लिए ही रुपये किसी भी तरह हों, छल-बल और कौशल से

मै बोला—भिक्षा से पेट भर सकता है। धन संग्रह करना सम्भव नहीं है।

कुछ मौजूद है—कम्बल है, झोला है, लाठी है, पर केवल वही सबसे अधिक जरूरी वस्तु सर्वश्रेष्ठ धन नहीं है। मेरा सुख-दुख, आनन्द-वेदना पथ-श्रम और तीर्थ-यात्रा, स्वप्न और सौन्दर्य-बोध, सहानुभूति और अनुप्रेरणा, इन सबके मूल मे जो रहता है, वही मैले रूमाल मे बंधे रुपए-पैसे, इसी बात पर पहले मेरा ध्यान गया। मेरे प्राणो का रस एक क्षण मे ही मानो सूख गया, शरीर मे जैसे एक बूंद रक्त भी नहीं है, सारे अग वर्फ की तरह ठडे और चेतनाहीन हो गये—मानो मेरी अकाल मृत्यु हो गई हो। अपने भयानक परिणाम की बात का ध्यान होते ही सांस रुकने लगी। इस पथ मे किसी की सहानुभूति नहीं, मोह-ममता नहीं—जो कुछ भी है वह बिलकुल मौखिक है—स्नेहहीन पुण्यलोभी यात्रियो का दल उदासीन होकर मुझे छोडकर चला जायगा—आज से चिर दिनो के लिए इस दुर्गम निर्वासन मे। सारे पहाड राक्षसो की तरह भयानक रूप मे सामने आकर विकट भाव से नृत्य करने लगे।

'क्यो दादा, दो भाई, जरा जल्दी करो !'

मै बोला—मेरे पास भी टूटे पैसे नही है, रुपया भॅजाना पडेगा।

'तो फिर बाजार जाकर ही भॅजाना पडेगा। इस देश मे रुपया भॅजाना भी बडा कठिन है।' यह कहकर गोपालदा चले गये।

दूसरी तरफ बुढियाऍ खाने को बैठी हैं। मेरे चूल्हे मे आग बुझ गई है और धुआं उठ रहा है, हजारो मक्खियो से चारो दिशाऐं छा गई, शायद खाने की वस्तुऐं तो अब ली नही जाएंगी। उनकी तरफ देखता हुआ पत्थर की तरह खडा रहा। नदी सूख गई, प्रवाह बन्द हो गया चारो दिशाऐं धू-धू कर रही थीं, छाया नही, और आंखो मे प्रकाश नहीं आनन्द नहीं आकाश विपाक्त हो गया। देखते-देखते समस्त प्रकृति का रूप मलीन हो उठा। मैं सन्यासी नही, भगवान पर भी मेरा पूरा विश्वास नही है, भगवान बद्रीनाथ की दया की आशा करके मैंने यात्रा आरम्भ नही की थी देवताओ पर मुझे विश्वास नहीं। मुझे भूख है, प्यास है, अपना जीवन सबसे अधिक प्रिय है। दरिद्रता में, दुःख मे निराशा मे मै वेदना पाता हूँ सब लुट जानेपर विपद्-ग्रस्त होना है गृह-वैगुण्य मे विधाता का अभिशाप माथे पर आने से इस समय आंखो मे आंसू भर आते हैं। मेरे अन्दर वैषयिक हृदय है, स्वार्थ और सुविधा के लिए लोलुपता है। मै देश वापस चला जाना चाहता हूं, समाज मे, मनुष्य मे, स्नेह-ममता दया-दाक्षिण्य लोभ-मोह, कलह-द्वन्द्व, ग्लानि और मालिन्य—इन सबके बीच मे मै गृहस्थ का जीवन बिताना पसन्द

काम धीरे-धीरे चल रहा है, जल्दी नहीं है। समय का अन्दाज है, विना-गुड़ी चट्टी तक पहुँचने में कोई देर नहीं लगेगी।

किन्तु [illegible]

[illegible]

बहुत धीरे-धीरे चल रहे हैं, जल्दी नही है। समय का अन्दाज है, विद्या-कुटी चट्टी तक पहुँचने में कोई देर नही लगेगी।

किन्तु ग्रह-वैगुण्य! आज सुबह से ही घुटनो मे न जाने क्यो अधिक दर्द हो रहा था, इस समय वह और भी बढ़ गया। ऊँचाई-नीचाई पर चलने का जिसे अभ्यास नही, सुना था, यह व्यथा उसे सहज ही अपना लेती है। बद्रीनाथ की पैदल-यात्रा के पक्ष मे यह व्यथा ही सबसे बड़ी बाधा है, यह बात सभी जानते हैं। चढाई के मार्ग पर चढते समय यह दर्द होता है, उतरने के रास्ते मे उतरते समय इसकी प्रति-क्रिया होती है। डर लग गया एव वह क्या भय था उसको आज लिखकर नही समझा सकूँगा। धीरे-धीरे पैर मचकाते हम चल रहे थे, और सभी आगे निकल गये थे, गोपालदा और ब्रह्मचारी आँखो से ओझल हो गये थे। वे क्यो न जाएँगे? जो रोगी और अशक्त हैं, स्वस्थ मनुष्य उनके साथ सहयोग कर अपने को पगु किस लिए करे? मेरे साथ उनका कौन-सा बन्धन? कैसा ऋण? लँगडाते-लँगड़ाते चल रहा हूँ, सुना है, आत्म-विस्मृति से पीड़ा कुछ देर के लिए कम हो जाती है! नाना अवस्थाओ मे आत्महारा होने का अभ्यास है। किन्तु आत्म-विस्मृति हो कैसे? जिसे भूल जाना ही उचित है, वही सबसे अधिक मन मे पहले आ उपस्थित होता है। अत. आईना होता तो देखता कि शरीर की क्या दुरवस्था हो गई है। धूल और धूप से सिर के बाल भी पुआल की तरह रूखे हो गये थे चमडा विवर्ण और रक्तहीन, आँखें भीतर धँस गई थी दृष्टि क्षीण हो गई थी, हाथ और पैर मैल से गन्दे, लकड़ियो की आँच लगते-लगते हाथो के रोम सफाचट हो गये थे। पहनने के कपडो और सिर के बालो मे एक प्रकार के पीडा देनेवाले पिस्सू पड गये थे। उनके लगातार उत्पीडन से रात मे निद्रा नहीं आती थी, एक बार भगा देने पर फिर न जाने देह मे कैसे घुस जाते थे? इनके साथ ही मक्खियो का उपद्रव रहता, लाखो-करोडो मक्खियाँ, सब मक्खीमय मक्खियो का समुद्र था। ऐसा कोई यात्री नही होगा जिसके हाथ-पैरो मे इनके काटने के कारण घाव न हुए हो। जल के ऊपर भी ये मक्खियो मँडराती थीं यह दृश्य मैंने पहले ही पहल देखा।

लाठी पर भार दे-देकर धीरे-धीरे विद्याकुटी आ पहुँचा। शाम हो चुकी है। पास ही एक कदली-वन है, शुक्ल-पचमी की ज्योत्स्ना केले के वृक्ष के चौडे पत्तो के ऊपर पड रही है, वे चाँदी के पत्तो की तरह झलमला रहे हैं, अन्धकार मे अलक्ष्य अलकानन्दा का झर-झर स्वर

समझ सकता। विचारों के अन्याय में सत्साहित्य को जो गन्दा करने की चेष्टा में व्यग्र रहते हैं, जान पड़ता है वे समालोचक मेरी ही तरह लँगड़ाते चलते हैं। लँगड़े पाँव की ग्लानि को वे साहित्य की तथाकथित समालोचना में फैला देते हैं।

'क्या दादा, बहुत कष्ट है? तुम बहुत पीछे रह गये। यहाँ पर तुम्हारे ही लिए ठहर रहा हूँ। यह—एक और संगी मिल गये हैं।'

मुँह उठाया। देखा, एक लम्बा-चौड़ा काले शरीर का बंगाली गृहस्थ एक शिला पर बैठा बीड़ी पी रहा है। नमस्कार आदि किया। फिर सामान्य बातचीत हुई। बातों-ही-बातों में पता चला कि वह अकेले ही नहीं हैं उनके साथ अपनी स्त्री और सास भी हैं। वे लोग कुछ दूर आगे चले गये हैं, दस मील से अधिक चलना उनके लिए कठिन है। उनका नाम अघोर बाबू था। वह बोले, 'बहुत कहा काँडी या डाँडी कर लो, इसमें खर्च ही कौन-सा बड़ा होगा, किन्तु उन्होंने एक न सुनी, स्त्रियों का हठ भी बड़ा भयानक होता है, बीच रास्ते में अकेला होना मुझे अच्छा नहीं लगता। पैदल चलेंगे तो पाँवों में दर्द तो होगा ही।'

मैं बोला—डाँडी में क्यों नहीं चढ़े?

'इसीलिए कि पुण्य न होगा। इस तरह चलने से बाबा बद्रीनाथ की दया अधिक होगी।'

ब्रह्मचारी बोला—आहा यह सत्य है, ओम नमो नारायणाय! भगवान में पूर्ण विश्वास रखकर जो नहीं चलते [illegible] अच्छा चलिये, मैं थोड़ा आगे चलता हूँ। यह कह कर वह झोला-कम्बल लेकर चलने लगा।

अघोर बाबू का मकान कलकत्ता में है। काज-कारबार है, पर अब व्यवसाय का कारबार मन्दा हो गया है। स्त्री को लेकर तीर्थ-भ्रमण को निकले हैं। उनके कोई भी बाल-बच्चा नहीं है। बोले, 'आप तो सन्यासी [illegible] अच्छा बताइये ब्रह्मचारी कैसा आदमी है? [illegible] कि आप तो उसे खिलाते-पिलाते हुए आ रहे हैं। वह कैसा [illegible] तो नहीं?'

[illegible] मुझे बताओ? [illegible]

[illegible] पूछता [illegible] अपने [illegible]

[illegible]

वृद्धा बोली—अच्छा, राधारानी की पीड़ा का साथी मिल गया। मेरी लड़की के बाएँ पाँव मे भारी दर्द है, बाबा!

'तब तो ठीक ही है। ब्रह्मचारी, तुम तो मेरे साथ इस समय नहीं खाओगे?'

ब्रह्मचारी पास आकर सिर खुजलाता हुआ बोला—यही बात तो आप से कहता था, मा अन्नपूर्णा का प्रसाद पाकर ही मेरी इस समय गुजर होगी दादा! आपने तो मेरे लिए यथेष्ट खर्च किया ही है। अब से इन्हीं . .

'अच्छा, अच्छा . .'

'मै आपके लिए भोजन तैयार कर दूँ दादा?'

'नहीं, मुझे बनाने मे कोई कष्ट न होगा।'

इतने मे गोपालदा दिखाई दिये। वे एक तरफ बैठकर, आनन्द से तम्बाकू पीने की व्यवस्था कर रहे थे। धीरे-धीरे बोले—बड़े घर की स्त्री हैं, क्या कहना? ओ हो, क्यो कष्ट करने निकली हैं! मालूम होता है ऐशो-आराम नहीं सह सकी। लो, पकड़ो चिलम को, दियासलाई जलाता हूँ।

पास-पास सभी रसोई बनाने बैठ गये। अघोर बाबू चाकू से आलू छीलने लगे, ब्रह्मचारी कहीं से मसाला इकट्ठा करके, उसे पत्थर पर पीसने बैठ गया। फिर भी यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उत्साह की भारी कमी है। अघोर बाबू की सास और वह अधमरी-सी होकर बैठ गई थी। मन सोचा उनमे अब उठने की शक्ति नहीं है, सारे अङ्ग धूल-धूसरित हो गये थे, कपड़े बहुत ही मैले हो गये थे, सिर के बाल जटाओं की तरह हो गये थे मानो वे सनक-संस्कार करके अभी हाल श्मशान से लौटी हों। कौन किसको देखे? जिस तरफ भी देखो, केवल [illegible]वट, मार्ग की पीड़ा, निढाल शरीर, और अवसन्न हृदय दिखाई [illegible]। इसी बीच कई स्त्री-पुरुष न चल सकने के कारण, अधिक [illegible] देकर कुलियों की पीठ पर कण्डी पर बैठकर यात्रा करने लगे [illegible] की मौसी के पैरों मे बहुत दर्द था। कण्डी मे चढ़ने अथवा उतरने के समय वह जिस तरह चीखती-चिल्लाती थी, उससे डर [illegible] था। निर्मला तो अनाहार के कारण अधमरी हो गई थी। रास्ता चलने से उसमें रसोई बनाने का उत्साह नहीं रहा था, इसलिए पानी और शक्कर मिला आटा घोलकर खा रही थी। किन्तु यह पेट क्यों [illegible] अन्यत्र उस [illegible] लगने शुरू हो गये। इसके अतिरिक्त

मक्खियों के काटने से जो खुजली उठती थी उससे भी कोई-कोई पागल की तरह इधर-उधर भागने लगते। ऐसा लगा कि झरने के पानी का भी दोष है। कई प्रकार के पहाड़ी पेड़ों व लताओं की पत्तियों के ऊपर झरने बहते हैं, इसलिए उसके पानी का उपयोग भी निरापद नहीं होता।

किन्तु जल-वायु का गुण भी आश्चर्यजनक है। आधा घण्टे विश्राम करने के बाद मृत शरीर भी फिर फुर्तीले और जानदार होकर उठ बैठे। खाने-पकाने, भीड़-भाड़, गप-शप, इधर-उधर की चर्चा में फिर उत्साह का ज्वार उठ पड़ता है। भोजन आदि के बाद सभी बर्तन साफ करके चट्टीवाले के साथ हिसाब करने बैठ जाते। मोटे हिसाब से एक आदमी के एक बार के खाने का खर्चा चार आने पड़ता है। किन्तु जहाँ चीजें मिलनी कठिन होती हैं, वहाँ पर छः आने से कम में उदर-पूर्ति नहीं होती है। घी और दूध के सम्बन्ध में जो कम खर्च करता है [illegible] तक बीमार होने की सम्भावना बनी रहती है। अपने हाथों से बनाये भोजन के सिवा और कुछ आहार करना इस मार्ग में विपत्ति-जनक है। हर साल आहारादि की असावधानी के कारण कितने यात्री [illegible] से हीन होकर मरते होंगे, इसकी कोई हद नहीं।

'इसी तरह कितने ही कष्ट होते हैं, जिन्हें देखकर मुझे [illegible] होता है। ये लोग जीवन को खतरे में क्यों डालते आते हैं?'

बहू के गले की आवाज सुनकर मैंने मुड़ फेरकर देखा। उसकी वाणी में करुणा और दर्द था। पहले किसी ने उत्तर नहीं [illegible] इसके बाद ही अघोर बाबू [illegible] बोले - तुम फिर [illegible] बैठ कर पूजा करने से क्या पुण्य नहीं होता?'

'मैं नहीं जानती हूँ [illegible] ऐसा [illegible] होगा [illegible] पता था?'

'अच्छा अब चुप हो जाओ' [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उतरते हुए अरे बाप रे ; घुटने टूटे पड़ते हैं। आँखो मे आँसू आ जाते हैं। लाठी पर भार रखकर चलने से दाहिना हाथ आज अब मुड़ ही नही रहा है—अच्छा, एक बात बताओगे ?'

मुख उठाया। वह अनेक दुविधाएँ और संकोच दबा कर हठात् मेरे मुख की तरफ देख कर बोली—बहुत देर से सोच रही हूँ—आप क्या स्वामी विवेकानन्द के कोई आत्मीय हैं ?

'जी नही।'

कुछ वक्त और इधर-उधर की बातो मे बिताया। भोजन बनाने की तैयारी मे था इसी समय बहू ने गुपचुप अघोर बाबू से कुछ अनुरोध किया। पति बोले, 'कितने ताज्जुब की बात है, तुम कह नहीं सकती ? यह तो तुम्हारे ही बतलाने की बात है।'

वह फिर पास आकर खडी हो गई।

मुख उठाने के पहले ही यह स्निग्ध, दीप्त और सम्भ्रान्त महिला अपने स्वाभाविक कोमल, लज्जाजडित कण्ठ से सविनय बोली—मार्ग मे आम का पेड देखकर एक कच्चा आम तोडकर ले आई, चटनी बनाई है, आप खायेगे ?

भूल गया था पृथ्वी पर कही स्नेह का बन्धन है, कही अयाचित आत्मीयता है, भूल ही गया कही मनुष्य के लिए मनुष्य का उद्वेग और हित-कामना है। मन मे लगा कि यह यहाँ दूर बगाल देश से श्याम-श्री की कमनीयता लेकर आई है, मिट्टी की ममता लेकर। फिर भी विनीत कण्ठ से बोला—शास्त्र मे कहा है, तीर्थ के मार्ग मे किसी से भेट या दान लेना उचित नही।

'ओ, तब रहने दीजिये, यह बात मुझे ज्ञात नही थी।' बोलते-बोलते वह सिर झुकाकर चली गई।

आज श्रीनगर पहुँचना चाहिये। जल्दी-जल्दी कोई ढाई बजे सभी रास्ते पर चलने के लिए आ गये। पैरों की तकलीफ के कारण सीधे खड़े होकर चल नहीं पाते वह भी बिल्कुल लाठी टेकती-टेकती लँगडाती हुई चल रही है, अब मालिश का ठीक इन्तजाम हुए बिना काम चलने का नहीं। अभी तो हम केवल छ दिन ही चले हैं। लगभग एक महीने तक रास्ता और चलना होगा पैरों को तो स्वस्थ रखना चाहिये ही। एक जगह दो-चार दिन विश्राम लेकर हम पैरों की थकान मिटा सकते थे, पर उससे हमारे चलने का छन्द भंग हो जाता, पीछे पड जाते, समय के साथ कदम नहीं रख सकते पथ के जो सुख-दुःख के अस्थायी

संगी थे—सुबह-शाम दु:ख में, दुर्गम में, जिनका व्यथित और करुण मुख हम देखते आ रहे थे, उनसे बिलकुल साथ ही छूट जाता। हम सभी, सबके परम आत्मीय हो गये थे—पण्डितजी, पगड़ी पहने रामावतार, एक पूना से आई हुई महाराष्ट्रीय वृद्धा, गोपालदा, अमरसिंह, कुली कालीचरण और तुलसीराम, ब्रह्मचारी, रुईदास शुक्ल—इनमें से किसी को छोड़ना हृदय को बहुत अखरता। जाति-विचार नहीं, स्पृश्यता और अस्पृश्यता का भी कोई प्रश्न नहीं, सब इकट्ठे बैठकर तम्बाखू पीते हैं। कालीचरण कुली ही सही, वह तम्बाकू का कश लगाकर हुक्के को गोपालदा के हाथ में देता, गोपालदा अमरसिंह के हाथ में, अमरसिंह ब्रह्मचारी के हाथ में, ब्रह्मचारी का प्रसाद रुईदास शुक्ल पाते। शाम के समय बिना मौज में आये कोई रह नहीं सकता था। सर्वत्यागी परिव्राजकों का दल तम्बाकू और सुलफा के नशे में अर्ध-चेतन हो चट्टी के पास बैठकर अपनी धुन में मस्त रहता। उन्हें बाहरी दुनिया में क्या हो रहा है, इसका कोई पता रखने की ज़रूरत नहीं थी। मनुष्य की कल्पना को घेरकर जो एक अलोक सामान्य रूप-कथा-सा स्वप्न-राज्य होता है, उसके मस्तक के ऊपर आती है प्रथम सूर्य-रश्मि लेखा, जो ऐसी मालूम होती है, मानो उदासिनी सन्ध्या का रहस्यमय पथ हो। वे सभी गृहत्यागी, सन्यासी और संन्यासिनी हैं, उनके मुख में केवल तीर्थ और देव-मन्दिरों की ही बात रहती है, नदी, सागर, और हिम के देश की ही चर्चा करते हैं; उनके पास में सुनाई देती है वन्य-जन्तुओं की बात, या विपत्ति की कहानी।

इस समय प्राय: आठ मील रास्ता है। चलने से पाँव दुखने लगे हैं। भीलकेदार तक चार मील मार्ग अतिरिक्त कष्टदायक है। इस स्थान का नाम टुण्डप्रयाग भी है। भीलगंगा और अलकानन्दा यहाँ पर मिलती हैं। कोई पाँच-छ: जीर्ण चट्टी वहाँ पास-पास ही हैं। पहले प्रस्ताव हुआ, आज भीलकेदार तक पहुँचा जाय, पर वहाँ तक जाने को कोई राज़ी नहीं हुआ। समय भी काफी है, अनायास ही इस समय तीन-चार मील तक चला जा सकता है। पैरों के दर्द के नाम पर हम दो-एक मनुष्यों ने आपत्ति की, किन्तु जन-मत की ही विजय हुई। सुना गया, मार्ग में चढ़ाई और उतराई वैसी कुछ नहीं है, अधिक पैरों पर ज़ोर देकर नहीं चलना पड़ेगा; श्रीनगर आज ही पहुँचना उचित है।

इस ओर मल्लिका और मालती-लता रास्ते में छाई हुई हैं। वन-गुलाब के जंगल से लजाई-सी सुगन्ध चुपचाप चली आ रही है। इ०

दिनों के बाद पार [illegible] मार्ग लिया। [illegible] के किनारे होकर [illegible] पहाड़ों तक [illegible] नदी के किनारे-किनारे [illegible] और निर्जन की तरह [illegible] हैं। मार्ग में [illegible] और [illegible] के घने जंगल हैं। उनके भीतर से पानी [illegible] हैं। इनके बीच रास्ते [illegible] लगता है! कहीं-कहीं आस-पास में [illegible] और [illegible] के [illegible] हैं, [illegible] के निशान पड़े हुए हैं। नदी के उस पार मनोरम प्राकृतिक शोभा है, पर्वत-प्रान्तर में हमारी थकी हुई दृष्टि और [illegible] नहीं होती; आँखें प्रकृति के अगाध सौन्दर्य के बीच निमग्न होकर [illegible] लगीं। स्नायु-ग्रन्थियाँ अलग होकर इस [illegible] के अन्दर [illegible] जाती है। हम प्रायः नदी के समतल आ गये। [illegible] गये। [illegible] गये।

पीछे रह गया था। [illegible] ऐसा माम और [illegible] मार्ग के पास थककर बैठ गई हैं। आगे-पीछे रहने से [illegible], सभी से एक बार मुलाकात हो जाती है [illegible] बार [illegible]। सबको विश्राम लेना ही पड़ता है पानी पीने तथा ठंडी हवा से पसीना सुखाने के लिए। फिर सिकुड़ा शरीर सीधा कर चलने लगा। नदी के किनारे बहुत गर्मी मालूम होती है और चढ़ाई पर चलने में ठंडी हवा लगती है। गर्मी की अपेक्षा ठंड में ही यात्रियों का मुँह [illegible] रहता है। माम ने पुकारा—तुम्हारा श्रीनगर कितनी दूर और है बाबा? लड़की से अब चला नहीं जाता!

खड़े होकर बात करने से शरीर टूटता-सा मालूम होता है, अतः झोला-कम्बल रखकर मार्ग के इस पार उदास होकर बैठ गया। बोला—अब ज्यादा दूर नहीं है।

मा और बेटी हाँफ रही थीं। लड़की के पैरों को सहलाते हुए बोली—तुम्हारे लोटे में थोड़ा पानी होगा बाबा? जरा दो तो?

इतनी थकावट थी कि कई मिनट तक यही विचार करता रहा कि मैं ही पानी दे दूँ या वह खुद ले लेंगी। आखिर वह ही खुद उठकर जल ले गईं। उन्होंने खुद पानी पिया और उसके बाद आँख मूँदी हुई लड़की के गले में भी पानी डाल दिया। पैरों के दर्द के कारण लड़की को होश नहीं था, वह प्राय चलने की शक्ति से हीन हो गई थी, फिर कुछ स्वस्थ हो सिर उठाकर देखने लगी। अब कृतज्ञता प्रगट करने की आवश्यकता नहीं, वह तो अब पुरानी चीज हो गई है। केवल बोली—आप तो पुरुष हैं, दर्द सहते हुए भी घसीटते-घसीटते चल सकते हैं किन्तु हम तो मृतप्राय हो जाती हैं।

धूल, बालू, तेल-जल के दागों से, बेपरवाही व असाध्य परिश्रम से ऐसा लक्ष्मी का-सा रूप सूखकर काला हो उठा है—यही बातें उनकी मा कहने लगी। यही मालूम भी हो रहा था। आराम, ऐश्वर्य और भोग मे पला हुआ शरीर, किन्तु लड़की को क्या नशा-सा चढा कि ऐसी कठोर तीर्थ-यात्रा को निकल पडी और साथ मे अपनी मा को भी ले आई। आजकल के लडके-लड़कियाँ सब दुनिया-भ्रमण की इच्छा करते हैं। केवल क्या तीर्थ-दर्शन और पुण्य-कामना के लिए ? कही लडकियाँ तो अपने देवता को लेकर किसी भी दिन उच्छ्वास-प्रकाश तक नही करती ? तिस पर भी यह जान पडा कि यदि यह लडकी कई वर्ष तीर्थों मे नही घूमेगी तो इसे शान्ति ही न मिलेगी। इसकी अवस्था भी इस समय कितनी होगी, तीस वर्ष की उम्र तक पहुँचने मे भी अभी देर है। धैर्य रखकर मैंने उसकी मा की बातें सुनी।

सुस्ताने के बाद फिर सबको उठना पडा। झोला-झोलियों का मृत्यु-यन्त्रणा-दायक बोझ फिर पीठ पर रख लिया। मा और बेटी लाठी टेकती-टेकती आगे चलने लगी। फिर वह बुढिया बोली—बाबा अघोर से कहो कि इस तरह तो हम चलकर मार्ग तै नहीं कर सकते, और क्या होगा दस दिन की देर ही हो जायगी। इस तरह से चलने मे तो प्राण ही निकले जाते हैं। दस मील से अधिक रोज चलना तो स्त्रियो के लिए ऐसा तो अब नही होगा बाबा !

रास्ते मे जूते घिसते-घिसते वे चल रहे थे। दरअसल उनकी हालत जो कोई भी देखता तो उसे यह धारणा होती कि ये कहीं भी दिवश होकर रास्ते मे गिर पड़ेंगे—कुछ भी विचित्र नहीं !

अन्त मे एक समय श्रीनगर के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए। मार्ग के पास ही बाजीकदलीवाले का पहाड़ है। बाईं तरफ नागपानी के जंगल से ले एक बड़ा रास्ता कमलेश्वर महादेव के मन्दिर की तरफ चला जाता है। मार्ग के मोड़ पर अघोर बाबू और ब्रह्मचारी प्रतीक्षा कर रहे थे। मा और बेटी हाँफते-हाँफते आकर [illegible] बैठ गयीं। इस तरह से तो हम नहीं चल सकते, [illegible] शरीर [illegible] है [illegible]। [illegible] देखो, कैसी शोचनीय दशा हो गई है !

ब्रह्मचारी [illegible] [illegible]

[illegible]

'नहीं।' एक मिनिट के भीतर हमारी बात का उत्तर दिया गया।

बाजार के आगे बढ़ जाने के बाद मैं और ब्रह्मचारी मन्दिर के दर्शन करने के लिए गये। पर उसमें कोई विशेषता नहीं। पुराना [illegible] मन्दिर है, भीतर एक [illegible] है। पूजा-अर्चना की कोई आयोजना नहीं। मालूम हुआ, पास ही कोई एक गाँव है क्योंकि [illegible] मन्दिर के [illegible] आये और [illegible] के लिए [illegible] लगे। भारत के प्रायः सभी तीर्थों में भगवान के नाम पर यात्रियों के प्रति ऐसा ही जुल्म किया जाता है। [illegible] और खुशामद द्वारा यात्रियों का शोषण करना इस देश के तीर्थों के पण्डे-पुजारियों का एक प्रधान कार्य हो गया है। [illegible] होकर हम वापस लौट आये। मार्ग और अधिक दूर नहीं था। कुछ रास्ता चलने पर [illegible] की तरफ एक बड़ा अस्पताल मिला। [illegible] जाकर भीतर घुस गये। [illegible] जितने भी रोगी दिखलाई दिये वे सभी प्रायः [illegible] थे। हमने अर्जी पेश की— पैरों के लिए एक मरहम [illegible] के लिए [illegible] और ब्रह्मचारी के दाँत के लिए एक [illegible] और चारों तरफ देख-सुनकर हम चले आये। श्रीनगर देखने में एक छोटा और सुसज्जित शहर है। अवश्य यहाँ का हेडक्वार्टर पौड़ी में है जो यहाँ से तो मील की दूरी पर है। वहाँ पर अदालत पुलिस चले आ रहे हैं और अफसर रहते हैं। पौड़ी का खूब नाम है। मार्ग में [illegible] बंगालियों को देखकर विस्मय हुआ। वे इस हिमालय के गहन राज्य में यहाँ के किसी कालेज में शिक्षा के लिए आये थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बंगाली दिग्विजयी होते हैं। बातचीत के बाद फिर आगे बढ़े। शहर का केवल एक बड़ा पक्का राज-मार्ग है और सौभाग्य से वह मैदान है। दुकानें अनेकों हैं। विलायती और जर्मन माल कम नहीं बिकता। सुनने में आया कि कुछ दिनों पहले यहाँ पिकेटिंग और सभाएँ आदि हुई थीं। रास्ते में एक जगह अब भी १४४ धारा का नोटिस टँगा हुआ था सभा-समितियाँ बन्द थीं। खोजते-खोजते धर्मशाला में पहुँचे। अन्दर दो बड़े आँगन हैं। सामने एक मन्दिर है जिसमें सन्ध्या की आरती की आयोजना हो रही थी। धर्मशाला दो मंजिलों की एक बड़ी बैरक है। देखकर बड़ी स्फूर्ति हुई। लाठी के सहारे कुछ दूर घूम आये। रास्ते के ऊपर ही मिठाइयों व अन्य खाने-पीने की चीजों की दो बड़ी दुकानें हैं। अतएव आज खाना बनाने की जरूरत नहीं। पूछने पर मालूम हुआ कि दूकान में चाय का प्रबन्ध भी हो सकता है। तब और क्या. किला फतह

कर लिया । अब पैरों में दर्द नहीं—बद्रीविशाललाल की जय ! ओम् नमो नारायणाय !—आनन्द से ब्रह्मचारी लट्टू की तरह घूमने-फिरने लगा ।

कैसी अनिर्वचनीय आनन्ददायक रात आ गई । दूध, दही, जलेबी, अचार, उम्दा घी की पूरियाँ, आलू की तरकारी, आदि—सबको एकत्र करके ही भोजन किया गया । भोजन का कार्य जितनी देर चला, ब्रह्मचारी ने आँखें नहीं खोलीं । बोला—दादा, मुँह खोले रहता हूँ, आप जितना चाहें उतना लगेज अन्दर ठूँस दीजिये ।

'ब्रह्मचारी, कालरा हो जायगा ?'

उच्च कण्ठ से, आँखें बन्द किये हुए ही वह क्षुद्र मनुष्य बोल उठा—दादा क्या रथ में बैठने से भय लगता है ? विश्व रूप दिखा दूँ क्या ? आज यह पेट सब कुछ निगल सकता है ! मैं दादा, भूखा खटमल हूँ ।

भोजन करने के बाद ब्रह्मचारी गीत गाते-गाते ऊपर उठ आया । पास ही पास दो व्यक्ति कम्बल बिछाकर लेट गये । आज ब्रह्मचारी बार-बार 'ओम् नमो नारायणाय' कह रहा है । ऐसा लगा कि आज के भोजन से उसके दाँत, होठ, जीभ और तालू—सभी परितृप्त हो गये हैं । कितनी ही उसने बातें की । उस तरफ गोपालदा बुढ़ियों के गोरख-धधे मे घूम रहे हैं । शाम को एक मात्रा अफीम और एक चिलम गाँजा पीने के बाद गोपालदा एक नूतन मूर्ति धारण करके—देव-लोक के पारिजात कानन मे दार्शनिक की तरह भ्रमण करने लगते, उस समय कोई उन्हे उद्विग्न करता तो वह हत्या करने के योग्य समझा जाता । बुढियो की किचिर-मिचिर से बेचारे परेशान हैं । सिर की तरफ एक छोटे घर मे अघोर बाबू सपरिवार आ पहुँचे । उनका खाना-पीना खतम हो गया है । उनकी सास और बहू एक बार आकर हमारे भोजन करने और सोने के सम्बन्ध मे पूछ गई ।

किन्तु पैरो का दर्द किसी से भी कम नहीं हुआ । कई टोटके, जड़ी-बूटियाँ, अस्पताल की मालिश—किसी से भी कुछ नहीं हुआ । अतएव मश्विरा हुआ कि रोज पाँच-सात मील ही मार्ग तै किया जाय । कष्ट के समय साधारणत हम जो कल्पना करते हैं, कार्यक्षेत्र मे उनमे परिवर्तन होता है । रास्ते मे चलते-चलते सोचा कि मार्ग तै करने के बाद ही शान्ति मिलेगी । श्रीनगर से सुबह चलने के बाद लगभग ग्यारह बजे

हम भट्टी सराय आ पहुँचे। रास्ते में सुकुना नामक एक छोटी-सी नदी और एक चट्टी पार हो गये। भट्टी सराय मे मार्ग समतल है; इसीलिए एक समय मे आठ मील तै करके आ पहुँचे। पास ही एक नदी है, उसका नाम हर्षवती है और वह अलकनन्दा की ही एक शाखा है। चट्टी के पास एक झरना है। उसी के प्रवाह को बुद्धि के द्वारा मनुष्य ने कैसे अपने प्रयोजन में लगाया है, यह दृश्य यहाँ देखा गया। इसका नाम पनचक्की है अर्थात पानी और पहिया। लकडी के एक पहिये के ऊपर पानी की धारा गिरकर धक्का देकर उसे घुमाती रहती है, ऊपर पत्थर की चक्की लगाई गई है और उसके अन्दर गेहूँ पिसते हैं। बिना परिश्रम किये आटा तैयार होता है। उसकी प्रशसा किये बिना रहा नही जा सकता। जहाँ तक याद है, इसी भट्टी सराय मे गोपालदा के दल की ब्राह्मणी मा के साथ अघोर बाबू का झगडा हुआ। कारण, जाति-विचार और शुद्धाशुद्धि। अत्यन्त मामूली कारण मे ब्राह्मणी मा की प्रचण्डता देखकर अघोर बाबू की स्त्री स्तम्भित हँसी हँसकर मुख की तरफ देखने लगी। ब्राह्मणी मा हमारे सनातन धर्म की साक्षात प्रतिमा थी। जाति-विचार और अस्पृश्यता छोड दे तो, वह बचती किस तरह? वह सनकी की तरह अटशट बोल उठती, 'किस पाप से तुम्हारे साथ पड गई। सूखे कपडे मेरे क्यो छू दिये? शूद्रो का मिज़ाज आजकल बहुत बढ गया है।'

अघोर बाबू अपने को न रोक सके। खैर, स्त्री ने आकर समझा दिया और उनसे कहने लगी—छि चाहे जो कुछ भी हो, ब्राह्मण की लडकी है, उसकी इज्जत का ख्याल रखना ही चाहिये।

ब्रह्मचारी क्रोध मे बडबडाता हुआ बोला वह क्या ब्राह्मणी है मा वह तो चाण्डाल है।

'छि बाबा जो अन्धा है उससे यह कह कर कि उसकी आँखें फूट गई हैं तिरस्कार करना बडा पाप है।'

गोपालदा चुपचाप बैठे रहे, वह किसी के शत्रु नहीं। किन्तु उसी दिन तीसरे पहर हम परस्पर विच्छिन्न हुए। छान्तिखाल की खडी और भारी तकलीफदेह दो मील की चढाई पार करके खाङ्करा चट्टी के पास आ गये—उस समय शाम होने मे कुछ देरी थी। अन्य स्थानो के मुकाबले थोड़ा मैदान है, पास ही अलकनन्दा की ही एक और शाखा है, उसका नाम पद्मवती है दूर पर एक मनोरम पर्वत-उपत्यका है तीन तरफ गगन-स्पर्शी पर्वत-शिखर हैं, स्निग्ध मधुर वायु है झरनो की

झंकार है, वन-फूलों की गन्ध। अघोर बाबू की स्त्री बोली—अब और आगे न चलिये, यहीं पर रुकना है न?

मार्ग की तरफ एक बार मुड़कर देखा। प्रायः एक मील दूर पर नदी के मोड़ पर सदलबल गोपालदा का अस्पष्ट छोटा-सा शरीर दिखलाई दिया। मन्द गति से चींटियों की कतार की तरह वे चल रहे हैं। दूसरे साथी भी चल रहे हैं। मैं बोला—उन्हें क्या छोड़ दें?

इस पर अघोर बाबू बोले—हो सकता है हम एक-दो मील पीछे रह जावें लेकिन उसके बाद तो उन्हें पकड़ ही लेंगे। सास बोली—यही ठीक होगा बाबा, तुम्हारा शरीर हमसे भी अधिक खराब हो गया है। हमारे कुली के पास बिस्तर है, वह भी जायगा, तुम्हारे लिए बिछौना बिछा दूंगी। इस समय तुम्हें अब अलग भोजन बनाने की जरूरत नहीं। हमारे साथ ही खाना-पीना हो जायगा। ब्रह्मचारी बोला आज के लिए उनकी माया-ममता छोड दो दादा'

पति-पत्नी तब इस तरफ देखकर विजय की हँसी हँसने लगे। मानो उन्होंने हम पर विजय पाली है। मैं बोला—आज न हो तो यहीं रहा जाय। किन्तु और दिन इतना थोड़ा मार्ग चलने से काम चलेगा नहीं। यात्रा तो हम जल्दी से जल्दी समाप्त करना चाहते हैं।

'अच्छा, तो खैर आज के लिए ही रह जाओ, मा का अनुरोध भी तो रखना चाहिये।'

मैंने कहा—पैरों के दर्द ने इस समय बड़ा कष्ट दिया है। नहीं तो अनुरोध न मानकर भी मैं चल देता।

स्त्री के प्रति यह अकरुणोक्ति सुनकर अघोर बाबू को ऐसा मालूम हुआ कि, कुछ बुरा मालूम हुआ। हँसकर बोले आपमें विशेष माया-दया नहीं है'

शाम हो गई। पहाड के शिखर के पास क्षीण चन्द्रमा दिखलाई दिया, तारे भी आकाश में जगह-जगह छिटकने लगे—सभी के चेहरे जाने किस तरह बदल-से गये। शायद ऐसा ही होता हो। दिन में प्रखर प्रकाश, स्थूल वास्तविकता मनुष्य का दैन्य और स्वार्थ के इतने स्थूल घात-प्रतिघात, किन्तु कितना आश्चर्य, रात में सब बदल गये। इस विश्व-प्रकृति को प्रसाधन-परिपाटी में अलंकृत करके मानो उसे किसी ने मनोहर कर डाला है। रात्रि की स्निग्ध ज्योत्स्ना में दिन के आलोक की मानो याद ही नहीं आती।

सास-बहू की परिचर्या में उस रात हम सबने ही आनन्द पाया।

उच्च शिक्षा की एक ऐसी दीप्ति और गम्भीरता वहू के मुख में और आँखों में देखी कि हम दोनों सन्यासी तक, उसकी प्रशंसा करते-करते नहीं अघाये। ब्रह्मचारी तो 'मा-मा !' कहते-कहते उन्मत्त-सा हो उठा। मैंने बाहर बैठकर आकाश के तारे गिनना शुरू कर दिया। वह रात कटी। सवेरे फिर ब्रह्मचारी को साथ लेकर आगे चला गया। प्रथम तीन-चार मील रास्ता हम चुपचाप चल देते हैं। रास्ते में सुबह दूध मिल जाता है, चार-छः आने सेर गरम दूध पीकर फिर चल पड़ते हैं। आज साथ में कोई खास यात्री नहीं थे। जो दो-एक मिले, वे अपरिचित थे। सहयात्री देखकर 'जय बद्रीविशाल' बोलने लगे। चलते-चलते हम चीड़ के जंगल के वायु-प्रवाह की तरह परस्पर एक दूसरे के हाँफने की आवाज सुनने लगे। विशेष कर चढ़ाई चढ़ते समय। आज का मार्ग कहीं बहुत सँकड़ा है, यथेष्ट सतर्क होकर सम्हल-सम्हल कर चलने लगे, नीचे की तरफ अति साहसी व्यक्ति भी देखने का दुःसाहस नहीं करता, सिर में चक्कर आ जाने की सम्भावना है, नीचे अनन्त जलराशि मानों यात्रियों को निरन्तर आकर्षित करने की चेष्टा कर रही हो। पैरों का दर्द सहकर चलने का अभ्यास हो गया है यन्त्रणा और दुःख शरीर के साथ हिल-मिल गये हैं। सीधे और स्वस्थ रूप में चलना तो भूल ही गये हैं। समस्त दुःख ही मनुष्य को इसी तरह सहनशीलता देते हैं। अपना प्रयोजन सिद्ध करते हुए वे मनुष्य को उपयुक्त करते हैं, खरा बनाते हैं, दुर्गम को सरल कर डालने के लिए उसे वे कठिन बना डालते हैं। निर्मल और परिच्छन्न होकर हमारे चलने का उपाय नहीं, रास्ते के समस्त दाग सारे अंगों में फूट उठे हैं। लोगों की आँखों में हम पहले के वे ही सामाजिक मनुष्य अब नहीं हैं, हमारे सारे शरीर में हिमालय की छाप है, एक तरफ ज्वाला-यन्त्रणा, दूसरी तरफ दुःसह क्लान्ति, फटे मैले कपड़े, धूल-धूसरित काला शरीर अन्दर धँसी हुई आँखें और शून्य दृष्टि, रक्तहीन मुर्झाया हुआ रूप। हम परस्पर एक दूसरे के मुखों की तरफ देखकर निःश्वास छोड़ते हैं। मानो हम बिलकुल समाप्त हो गये हों, मानो हमारा दीवाला निकल चुका हो।

उस दिन दोपहर के समय हाँफते-हाँफते हम कई व्यक्ति प्रायः मुमूर्षु अवस्था में अलकनन्दा का पुल पार कर रुद्रप्रयाग आ पहुँचे। विश्राम, कहीं कुछ विश्राम लेना चाहते हैं। लाठी टेकते-टेकते एक धर्मशाला की ऊपरवाली मंजिल में बैठ गये। अब तबियत नहीं, रुचि नहीं—और उठ भी नहीं सकते। एक बार चीत्कार करके मार्ग के

इन दु:खो का प्रतिवाद करने लगा—किन्तु ठहरो, पहले थोड़ा सो लें। सब चूल्हे मे जाय, सब ध्वंस हो जाय—इसका क्या प्रयोजन था, कोई आज कह सकता है ? हम क्या चाहते हैं ? इन दु:खो का अन्त जिस दिन होगा, उस दिन हमे क्या मिलेगा ? दरिद्र की तरह दीनता और मलीनता को लेकर हम क्या भिक्षा मॉगने आये हैं ?

आँखो के पलक बन्द कर सो गया। ओहो, यही अच्छा है। और आँखे खोलकर नही देखा, ताकि कोई देखने मे न आ सके। सब मिट जाय, दूर हो जाय, इन पुण्य-लोभी तीर्थकीटो के प्रति और कोई श्रद्धा नही, माया नही। और कही न जाऊँगा, काफी शिक्षा मिल चुकी है इस बार यही सदा के लिए मिट्टी मे पडा रहूँगा।

किन्तु हाय रे निर्लज्ज शरीर, फिर स्निग्ध मधुर हवा के स्पर्श से धीरे-धीरे सजीव और सचल हो उठा ! धर्मशाला के नीचे ही गहरी, नीली अलकानन्दा का कलकल्लोल है, फिर क्यो न आँखें खुल पडे ? सूर्य के प्रकाश मे चमकती जल-धारा के ऊपर पर्वत शिखर की श्यामल छाया उतर पड़ी है—अरे मन, देख तो सही। गौर से देख—शरीर अब कातर नही, दृष्टि अब क्षीण नही व्यथा नही, विक्षोभ नही—क्या ऐसा और कही देखा है ! यह तो केवल रूप नही, यह तो रूपातीत है : केवल सौन्दर्य नहीं, लोकोत्तर व्यञ्जना है , केवल काव्य नही, सुदूर अनिर्वचनीयता है। जल, मिट्टी, वृक्ष, प्रकाश और आकाश—इनको छन्द के अन्दर लाकर और फिर भाव-रूप देकर, व्यञ्जना की ओर इगित करके—यह सब की अपेक्षा बडे शिल्पी, सर्वोत्ताम स्रष्टा का कलात्मक कार्य है। अरे मन ! खूब अच्छी तरह देख !

धीरे-धीरे उठकर बैठ गया, मानो हड्डियाँ टूट-फूट जाने से पंगु हो गया, पैरो मे अब हाथ नहीं लगाया जाता, जैसे बडे-बडे फोडे उठे हो। यही रुद्रप्रयाग है। एक मामूली शहर उस पार पहाड की गोदी में छोटे-छोटे दो सरकारी बंगले, दक्षिण मे अलकानन्दा और मन्दाकिनी का सङ्गम-तीर्थ है। एक नदी देव-लोक की और दूसरी ब्रह्मलोक की। इसी नदी के सगम मे एक दिन गय राजा के यज्ञ में असन्तुष्ट परशुराम के शाप से ब्रह्म-राक्षस योनि प्राप्त दो लाख ब्राह्मणो की मुक्ति हुई थी। यहाँ पर रुद्रेश्वर का शिव-मन्दिर है। धर्मशाला, सदाव्रत, डाकखाना और एक छोटा-सा बाजार है। रुद्रप्रयाग मे मार्ग के दो भाग हो गये हैं। एक रास्ता कर्णप्रयाग होकर अलकनन्दा के किनारे-किनारे बद्रिकाश्रम की ओर चला गया है। और एक मार्ग मन्दाकिनी के किनारे-किनारे

केदारनाथ की तरफ चला गया है। हम प्रायः सौ मील पार करके आ गये हैं। भीतर चारों तरफ देखा, मानो मृत्युपुरी है। कोई ज्वर से पीड़ित है, किसी को पेट की शिकायत है, कोई-कोई यात्री अकर्मण्य हो गया है, मुँह और आँखों पर मक्खियाँ बैठती हैं, किन्तु वह निश्चेष्ट और निस्पन्द पड़ा है, यदि मृत्यु हो जाय तो शव ले जाने के लिए लोग नहीं। फिर भी इसी तरह ये लोग चलते हैं, लँगड़ाते-लँगड़ाते रेंगकर, छिपकली की तरह पहाड़ पर चढ़कर, रास्ते में जगह-ब-जगह रोग और यन्त्रणा से जर्जरित होकर कई लोग रुक जाते हैं। सहयात्री एक बार मुँह फिरा उदासीन होकर 'अहा' कहकर चले जाते हैं। मालूम होता है कि बाबा (बद्रीनाथ) की दया नहीं हुई है।

दिन तीसरे पहर की तरफ झुका। जो केदारनाथ की तरफ जाने से डरते हैं, वे सीधे बद्रीनाथ की तरफ यात्रा करने जाते हैं। केदारनाथ का पथ भयानक है। केदारनाथ का दर्शन करने जाने के लिए और भी अस्सी मील रास्ता तै करना पड़ता है। रुद्रप्रयाग के सङ्गम में ही यात्रियों की पुण्य-कामना की अग्नि-परीक्षा होती है। जो शरीर से भयभीत, अशक्त और दुर्बल होते हैं, यात्रा का उत्साह जिनमें नहीं रहता है, जिनका रोग की स्याही से शरीर काला हो जाता है, वे केदारनाथ के मार्ग की तरफ फिरकर भी नहीं देखते, वे कर्णप्रयाग की तरफ चले जाते हैं। उनके पक्ष में केवल बद्री है, केदारबद्री नहीं। मैंने भी केदार परित्याग करने का इरादा कर लिया। किन्तु घटना का प्रतिघात दूसरी ही तरह का हो गया। तीसरे पहर एक निकृष्ट श्रेणी की बंगाली स्त्री हठात् खोजते-खोजते पैरों के पास आकर रो पड़ी, 'ओ बाबा रक्षा करो बाबा! रक्षा करो बाबा! मेरी गुरु-माता के बचने का और कोई उपाय नहीं। तुम्हारे बारे में रास्ते में सुनती-सुनती यहाँ आई हूँ बाबा हमारा और कोई धन नहीं!'

पहले तो वह जोर-जोर से रोने लगी, रोना-धोना जब बन्द हो गया तब उसने रुक-रुककर, वह सारी घटना सुनाई जो घटी थी। उसके कथनानुसार माता और कई शिष्याएँ कलकत्ता उल्टाडिङ्गि बोस्टम के अखाड़े से आये थे, मठजी के बगीचे में उनका अखाड़ा है, सब लोग ठीक चले आ रहे थे, लेकिन परसों रात को किसी एक चट्टी से अन्धकार में गुरु-माता चट्टी के दरवाजे से किसी काम से बाहर निकलीं। अचानक पैर फिसल गया और वह पहाड़ से नीचे गिर पड़ीं। उलटती पलटती वह एक गड्ढे में जाकर अटक गईं। चट्टी के लोग उसकी

तलाश मे उतरे। देखा तो गुरु-माता के सारे शरीर की हड्डियाँ चकनाचूर हो गई हैं और शरीर ख़ून से लथपथ और बेहोश हो गया था।

पैसा-टका जो कुछ था, उससे कठिनता से एक कांडी का आयोजन कर बूढी को श्रीनगर के अस्पताल मे ले जाया गया. वहाँ प्राथमिक चिकित्सा तो होती है किन्तु स्थानाभाव के कारण अस्पताल के कर्मचारी रोगी को रखना नहीं चाहते, कुछ दवाएँ के साथ मे रखकर रुद्रप्रयाग भेज दिया। '—आओ बाबा, तुम्हारे दोनो पावो पर पड़ती हूँ कुछ व्यवस्था कर दो।' फिर वह जोर-जोर से सिसकियाँ भरने लगी।

घटना अवश्य ही सब सत्य थी। नीचे आकर देखता हूँ तो बूढी यन्त्रणा से हृदय-विदारक चीत्कार कर रही है। समस्त जीवन धर्माचरण से बिता कर और शिष्या के कान मे मन्त्र फूँक कर, इस सर्वश्रेष्ठ तीर्थ के पथ पर आकर एक नारी की यह शोचनीय गति! किन्तु जीवन मे ऐसा ही तो होता है। अपराध नहीं फिर भी दण्ड है, पाप नहीं फिर भी एक मुक्तिहीन प्रतिफल है, कारण नहीं फिर भी दु:ख और व्यथा का एक दुर्भोग रहता है। किन्तु चुपचाप खडे रहने का समय नहीं, समय बीता जा रहा है. अतएव लाठी के ऊपर अवलम्बन कर. लोगो को बुलाकर उन्हे बूढी की अवस्था से परिचित कराया। एक स्थानीय युवक और अघोर बाबू ने उस दिन खूब सहायता की। बाजार मे, पथ मे, घाट मे और यात्रियो के पास में घूम-घूमकर मनुष्य के जीवन की आकस्मिक विपत्ति के सम्बन्ध मे ओजस्विनी भाषा मे वक्तृता देकर, अन्त मे श्रोताओ के दुर्बल मुहूर्त के समय चतुरता के साथ भिक्षापात्र बढाया। हमारी जाति भिखारियो की जाति है, अतएव अपमान का तो मैने अनुभव किया नही, वरन परोपकार के आवरण से ढक कर उसको महत्व का एक बडा खोल पहिना दिया। धेला, पैसा, आना दो आना, अठन्नी—किन्तु पूरा एक रुपया किसी ने दिया नही। मैंने खयाल किया कि दोष मेरा ही है, शायद एक रुपए मूल्य की वक्तृता मै दे ही नही सकता, सोलह आने मूल्य एक साथ मिला नही। मुझे ऐसा लगता है कि जीवन मे निस्स्वार्थ परोपकार करने का यही प्रथम सुयोग मैंने पाया है, अतएव इसको योही नही छोडा जा सकता था. यात्रियो के पास से अर्थ-शोषण के कार्य मे चिपट गया। अन्त आवेगपूर्ण और साहित्यिक हिन्दी भाषा मे उस दिन मानवीय नीतिबोध धर्मानुभूति और परोपकार की प्रेरणा के सम्बन्ध मे जैसा उसने अना-मृनर व्याख्यान दिया, वैसा राजनीति की दिशा मे मुड़ने से शायद मै

केदारनाथ की तरफ चला गया है। हम प्रायः सौ मील पार करके आ गये हैं। भीतर चारों तरफ देखा, मानो मृत्युपुरी है। कोई ज्वर से पीड़ित है, किसी को पेट की शिकायत है, कोई-कोई यात्री अकर्मण्य हो गया है, मुँह और आँखों पर मक्खियाँ बैठती हैं, किन्तु वह निश्चेष्ट और निस्पन्द पड़ा है, यदि मृत्यु हो जाय तो शव ले जाने के लिए लोग नहीं। फिर भी इसी तरह ये लोग चलते हैं, लँगड़ाते-लँगड़ाते रेंगकर, छिपकली की तरह पहाड़ पर चढकर, रास्ते में जगह-ब-जगह रोग और यन्त्रणा से जर्जरित होकर कई लोग रुक जाते हैं। सहयात्री एक बार मुँह फिरा उदासीन होकर 'अहा' कहकर चले जाते हैं। मालूम होता है कि बाबा (बद्रीनाथ) की दया नहीं हुई है।

दिन तीसरे पहर की तरफ झुका। जो केदारनाथ की तरफ जाने में डरते हैं, वे सीधे बद्रीनाथ की तरफ यात्रा करने जाते हैं। केदारनाथ का पथ भयानक है। केदारनाथ का दर्शन करने जाने के लिए और भी अस्सी मील रास्ता तै करना पड़ता है। रुद्रप्रयाग के सङ्गम में ही यात्रियों की पुण्य-कामना की अग्नि-परीक्षा होती है। जो शरीर से भयभीत, अशक्त और दुर्बल होते हैं, यात्रा का उत्साह जिनमें नहीं रहता है, जिनका रोग की स्याही से शरीर काला हो जाता है, वे केदारनाथ के मार्ग की तरफ फिरकर भी नहीं देखते, वे कर्णप्रयाग की तरफ चले जाते हैं। उनके पक्ष में केवल बद्री है केदारबद्री नहीं। मैंने भी केदार परित्याग करने का इरादा कर लिया। किन्तु घटना का प्रतिघात दूसरी ही तरह का हो गया। तीसरे पहर एक निकृष्ट श्रेणी की बंगाली स्त्री हठात् खोजते-खोजते पैरों के पास आकर रो पड़ी—ओ बाबा रक्षा करो बाबा ' रक्षा करो बाबा ' मेरी गुरु-माता के बचने का और कोई उपाय नहीं। तुम्हारे बारे में रास्ते में सुनती-सुनती यहाँ आई हूँ बाबा हमारा और कोई धन नहीं '

पहले तो वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी, रोना-धोना जब बन्द हो गया तब उसने रुक-रुककर वह सारी घटना सुनाई जो घटी थी। उसके कथनानुसार माता और कई शिष्यायें कलकत्ता उल्टा डिङ्गि बोस्टम के अखाड़े से आये थे, सेठजी के बगीचे में उनका अखाड़ा है, सब लोग ठीक चले आ रहे थे लेकिन परसों रात को किसी एक चट्टी से अन्धकार में गुरु-माता चट्टी के दरवाज़े से किसी काम से बाहर निकलीं। अचानक पैर फिसल गया और वह पहाड़ से नीचे गिर पड़ी। उलटती पलटती वह एक गड्ढे में जाकर अटक गई। चट्टी के लोग उसकी

तलाश में उतरे। देखा तो गुरु-माता के मारे शरीर की हड्डियाँ चक-नाचूर हो गई हैं और शरीर रक्त से लथपथ और बेहोश हो गया था।

पैसा-टका जो कुछ था, उससे कठिनता से एक डांडी का आयोजन कर बूढ़ी को श्रीनगर के अस्पताल में ले जाया गया, वहाँ प्राथमिक चिकित्सा तो होती है किन्तु स्थानाभाव के कारण अस्पताल के कर्मचारी रोगी को रखना नहीं चाहते, कुछ दवाओं के साथ में रखकर रुद्रप्रयाग भेज दिया। '—आओ बाबा, तुम्हारे दोनो पावों पर पड़ती हूँ कुछ व्यवस्था कर दो।' फिर वह जोर-जोर से सिसकियाँ भरने लगी।

घटना अवश्य ही सब सत्य थी। नीचे आकर देखता हूँ तो बूढ़ी यन्त्रणा से हृदय-विदारक चीत्कार कर रही है। समस्त जीवन धर्माचरण से बिता कर और शिष्या के कान में मन्त्र फूँक कर, इस सर्वश्रेष्ठ तीर्थ के पथ पर आकर एक नारी की यह शोचनीय गति! किन्तु जीवन में ऐसा ही तो होता है। अपराध नहीं फिर भी दण्ड है, पाप नहीं फिर भी एक मुक्तिहीन प्रतिफल है, कारण नहीं फिर भी दुःख और व्यथा का एक दुर्भोग रहता है। किन्तु चुपचाप खड़े रहने का समय नहीं, समय बीता जा रहा है, अतएव लाठी के ऊपर अवलम्बन कर, लोगो को बुलाकर उन्हें बूढ़ी की अवस्था से परिचित कराया। एक स्थानीय युवक और अघोर बाबू ने उस दिन खूब सहायता की। बाजार में, पथ में, घाट में और यात्रियो के पास में घूम-घूमकर मनुष्य के जीवन की आकस्मिक विपत्ति के सम्बन्ध में ओजस्विनी भाषा में वक्तृता देकर, अन्त में श्रोताओं के दुर्बल मुहूर्त के समय चतुरता के साथ भिक्षापात्र बढ़ाया। हमारी जाति भिखारियो की जाति है, अतएव अपमान का तो मैंने अनुभव किया नहीं, वरन परोपकार के आवरण से ढक कर उसको महत्त्व का एक बड़ा खोल पहिना दिया। धेला, पैसा, आना दो आना, अठन्नी—किन्तु पूरा एक रुपया किसी ने दिया नहीं। मैंने खयाल किया कि दोष मेरा ही है, शायद एक रुपए मूल्य की वक्तृता मैं दे ही नहीं सकता, सोलह आने मूल्य एक साथ मिला नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि जीवन में निस्स्वार्थ परोपकार करने का यही प्रथम सुयोग मैंने पाया है अतएव इसको योंही नहीं छोड़ा जा सकता था, यात्रियो के पास से अर्थ-शोषण के कार्य में चिपट गया। अन्ध आवेगपूर्ण और साहित्यिक हिन्दी भाषा में उस दिन मानवीय नीतिबोध, धर्मानुभूति और परोपकार की प्रेरणा के सम्बन्ध में जैसा उत्तेजनामूलक व्याख्यान दिया, वैसा राजनीति की दिशा में मुड़ने से शायद ये

घात-प्रतिघात से जल का प्रबल गर्जन, कानों में सुना नहीं जाता था। तब भी उस शब्द को अतिक्रम करने पर मन में लगता था कि आज बहुत सुन्दर प्रशान्त रात्रि है। आज सोना उचित नहीं, नदी-पर्वत और ज्योत्स्ना की ओर एकान्त मन में देखकर आज की रात इसी तरह काटनी उचित है। इसी स्वप्नमय रात्रि में नदी के गर्भ की ओर इशारा कर ब्रह्मचारी ने कहा—आइये मेरे साथ, इसी बाएँ हाथ की ओर

सीढ़ियों के पास ही पहाड़ की ढालू भूमि पर एक अधपकी कुटी थी। ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे उसके भीतर आ घुसा। एक कोने में एक प्रकाश टिमटिमा रहा था। बाघ और भालू की खाल के तीन-चार आसन बिछे हुए थे, उसी में से एक के ऊपर एक भारी-भरकम बूढ़ी सन्यासिनी बैठी हुई थी, नवागतुक को देख हँसकर सस्नेह उसने कहा—आओ बेटा।

उसके चरणों के पास जाकर बैठकर प्रणाम किया। ऐसा जान पड़ा कि आने के पहले ही ब्रह्मचारी ने मेरे बारे में इनसे बातचीत कर रखी है। अभी तक नहीं देखा था, पास ही में एक शीर्णकाय वृद्ध हाथ में एक एकतारा लेकर बैठे हुए हैं, सन्त के समान यही गायक हैं। आदर-सत्कार में कमी नहीं हुई, अनेक तीर्थों के बारे में बातचीत होने लगी। संन्यासिनी नारायण गिरि माई ने कैलाश जाने के लिए परामर्श दिया, आषाढ़ मास ही कैलाश जाने के लिए उपयुक्त समय है, इस बार के सुयोग्य को हाथ से न जाने दिया जाय। विनय और भक्ति के साथ उनकी वाणी सुनता जा रहा था। घर के भीतर माल-असबाब के रूप में ये ही चीजें थीं—रुद्राक्ष की कई मालाएँ, दो शंख, लकड़ी के कई कटोरे, चार-पाँच कम्बल, पत्थर के कई बर्तन, कई ताम्रपात्र और फूल, मोटी-मोटी तीन किताबें और आग रखने का एक ठीकरा। माईजी (संन्यासिनी जी) के साथ खूब बातचीत होने लगी, सभी ने भाग लिया, माईजी के लिए तो सभी बेटा-बेटी थे—बहुत अच्छा मालूम हुआ। प्रकाश टिमटिमा रहा है, दरवाजे के पास आकाश से चाँदनी की एक झलक आ पड़ी है, माईजी अपनी मनोरम लालित्यपूर्ण हिन्दी और उर्दू भाषा में अपने बहु-तीर्थ-भ्रमण की अभिज्ञता की कथा कहने लगीं। कहाँ किस नदी के किनारे हिंस्र जंगली जानवर विचरते हैं, किस मरुभूमि में से अपरिचित दुर्लभ-पथ कहाँ गया है, किस अनजान पर्वत-चोटी के तुषाराच्छन्न-पथ में झब्बू और घोड़े की पीठ पर सवार होकर उनको कभी कैलाश जाना पड़ा था, ये सब बातें उन्होंने अपनी

रहस्यमय और चमत्कारपूर्ण कहानी में कहीं । बात करते-करते एक समय वह भीतर की ओर ताककर बोलीं—चिलम बना दो रज्जी, ए सुना ?

भीतर से आवाज आई 'देथे माई !' और उसी के दो मिनट बाद दो तरुणी सन्यासिनियाँ धीरे-धीरे बाहर आईं । पहली माई के पास आकर बैठ गई और दूसरी पीतल से मढ़ी एक बड़ी पतली चिलम को तैयार कर माईजी के हाथ मे देकर दूसरी के पास जाकर बैठ गई। भीतर की आवहवा थोड़ी देर के लिए न जाने कैसे बदल-सी गई। पहले ही मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये दोनो फूल एक ही टहनी के हैं । सिर पर जटाओ की लम्बी वेणी, मुख में सयम की एक मिश्र दीप्ति और कठोरता, देह बलिष्ट और दीर्घाकार, वस्त्र गेरुए रग मे रँगे और चारो चक्षुओ मे निर्विकार और नि:स्पृह शून्य दृष्टि । उनकी ओर एक बार ताक कर ब्रह्मचारी ने दियासलाई जलाई, माईजी ने चिलम मे जोर का एक कश लिया । हाँ, जोर से ही लिया । जिस समय धुँआ छोडा तो कुटी के भीतर उस समय अन्धकार हो गया । सबके हाथो मे चिलम एक बार घूम कर सोनी और रज्जी के हाथो मे पहुँच गई । उनका अकुण्ठित धूम्रपान देखकर मै चकित हो गया । इस समय वृद्ध के गाने की बारी थी । एकतारा को ठोककर उन्होने धीरे-धीरे कठ की आवाज उठाई, गाना तो उनका चमत्कारपूर्ण था । मुग्ध श्रोताओ का दल चुपचाप कान लगाकर बैठा रहा, केवल बीच-बीच मे चिलम एक हाथ से दूसरे हाथ मे जाने लगी । किन्तु समस्त वातावरण मे एक विस्मय निहित था । यह मानो एक कल्पित रूप-कथा थी । हम नवागत विदेशी थे, वृद्ध गायक भी सम्पूर्ण नवीन परिचित थे, सामने यही ममतामयी आश्रयदात्री थी, उसके दोनो ओर लक्ष्मी और सरस्वती इन तीनो नारियो के घर-द्वार उनकी जीवन-यात्रा उनका आचार-व्यवहार, कहाँ से वे आई हैं, ये कौन हैं और क्या हैं इनके जीवन का चरम लक्ष्य क्या है इस प्रकार की नाना समस्याओं मे मै उलझा रहा । फिर भी आज उनकी कहानी लिखने मे पूरी सच्चाई से स्वीकार करूँगा कि उस ज्योत्स्नामयी सुन्दर रात्रि मे उस रहस्यमय क्षुद्र कुटी के स्वल्पालोकित परिवेष्टन के बीच मे सन्यास जीवन के एक अपूर्व सयम और उसकी श्री ने सबके मुखो को निर्मल और उदासीन कर रखा था अत्यन्त सहज सरल सौजन्य और उदासीनता लेकर हम सभी दो व्याघ्रचर्मो के ऊपर बिल्कुल पास-पास बैठे थे । उस दिन भी परिचय प्राप्त नहीं किया आज तो हम अज्ञात हैं -

ये दो लड़कियाँ कौन हैं, माईजी से उनका क्या सबंध है, उनका रास्ता क्या है, इस कुटी और इस आश्रम को भी तो ये छोड़कर शीघ्र चली जावेंगी, किन्तु क्यों? जीवन उनका केवल शून्य है? केवल एकान्त लवलीन है? उनकी समस्त जीवन-व्यापी पथ-यात्रा की परम सार्थकता क्या है?

गाना बन्द हो जाने पर माईजी को प्रणाम कर, बोझिल मन से विदा ली। हाँ, यह स्वीकार करने मे लज्जा नहीं कि मेरा क्षुद्र मन कौतूहल से भर उठा। केवल कौतूहल से ही, चन्द्रिका-प्रकाशित निस्तब्ध रात्रि के चरणों के पास खड़ा परिश्रान्त और पंगु पथिक मैं—मैं क्या शपथ लेकर कह सकता हूँ कि मेरे मन मे केवल कौतूहल था, वेदना बिन्दु मात्र भी नहीं थी? मूढ़ विपथगामी संन्यासी मैं, मैं भी यह जानता हूँ कि जीवन की व्यर्थता का रूप कैसा होता है! सुख, ऐश्वर्य, आनन्द, संभोग, रस-पिपासा—'जीवन अनित्य है' यह कहकर ही तो इनका इतना प्रयोजन है, इतना प्रलोभन है! समस्त जीवन लगाकर कठिन वैराग्य और भयावह शून्यता को प्रकाशित कर रही हो, तुम नारी हो, तुम विश्वसृष्टि के अनन्त स्रोत को प्रतिहत कर रही हो, प्रकृति के नियम का अपमान कर रही हो, ध्वंस की निष्ठुरता को ससार मे लाई हो, रूप और सौन्दर्य का गला दबाकर उनकी हत्या कर रही हो!

एक हाथ मे लाठी लेकर और दूसरे हाथ से ब्रह्मचारी के कन्धे का सहारा लेकर, पाँव घसीटते-घसीटते ऊपर उठा। ब्रह्मचारी मुख की ओर देखकर बोलने लगा—आपको यह क्या हो गया है दादा, आपको न लाना ही ठीक था, यह मैंने नहीं सोचा।

दूसरे दिन फिर कठिन पैदल-यात्रा। ब्रह्मचारी साधारण गति से चल रहा है, अघोर बाबू आगे जा रहे हैं, सास और बहू कष्ट से चल रही हैं। बन्धुत्व एवं आत्मीयता कुछ घनिष्ट हो गये हैं। अघोर बाबू को खुशी हो रही है, बहू ने बडी बहिन के समान व्यवहार करना प्रारम्भ किया है। उनकी आँखो और मुख मे सस्नेह हँसी थी, बातचीत मे आन्तरिकता, दोनो हाथो मे सहोदर की सेवा और सुख-दुख का ध्यान। उनको साथ मे पाकर कोई भी यात्री अपना सौभाग्य समझेगा। छतोली और मठचट्टी पार करने के बाद दोपहर की धूप मे थके हुए हम रामपुर चट्टी पहुँचे।

किन्तु एकाएक विपत्ति सामने आ खड़ी हुई। सास के पाँवो मे एक बड़ा छाला पड़ गया। चलने मे उसको भारी कष्ट होने लगा। सभी

तो, जाना तो मुझको जल्दी है ही, शायद फिर कभी आपके साथ भेंट हो ।'

जान पड़ा कि बहू की आंखें अपने को अधिक न रोक सकीं, वे भी डबडबा आईं, रुद्ध कण्ठ से बोली—मेरा केवल एक छोटा भाई था, वह भी आपकी ही तरह था वह अब नहीं है ! मा लड़के के साथ तुम बातचीत करो ।'

मा ने मुख उठाकर देखा। मैं बोला—अपना पता ही बतला दीजिए, यदि स्वदेश लौटा तो कभी

'ठिकाना तो बतलाने का उपाय नहीं है भाई।'

विस्मित होकर मैंने पूछा—क्यों ?

अस्फुट स्वर में मा बोली—खैर जो भी हो, पता तू ही बतला राधा-रानी, हम मा-बहिन जितनी भी अयोग्य हों !

नाटकीय प्रदर्शन के लिए मेरे पास समय नहीं था। 'अच्छा, तब आप बैठिये ।' कहकर मैं झुका और नमस्कार करने ही को था कि अघोर बाबू की स्त्री ने हाथ पकड़ लिया। बोली—नहीं बोल सक रही हूं भाई, नारियों के अपमान की कथा कहने को मुंह खुलता ही नहीं, तब भी तुमसे नहीं छिपाऊंगी, नहीं तो बद्रीनाथ-यात्रा मेरे लिए मिथ्या होगी।

हम सभी ने परस्पर एक दूसरे के मुख की ओर एक बार देखा। लड़की और माता ने माथा झुका लिया, और उसी तरह नतमस्तक होकर ही अघोर बाबू की स्त्री ने भरे गले से कहा—मैं तुम्हारी बड़ी बहिन हूं, किन्तु मैं नरक की कीट हूँ। मैं मैं वेश्या !

दोनों कान झन-झन करने लगे। बोला—क्या कहती हो !

कोई उत्तर नहीं और उत्तर सुनने से पहले ही घर छोड़कर पत्थरों की सीढ़ियों को पार कर नीचे उतरकर किस तरह मैं भागा, उसका खयाल कर आज भी आश्चर्य होता है। मैं नीति का ज्ञाता नहीं हूँ, वेश्या को वेश्या समझ कर ही मैं नहीं चौंक पड़ता, साहित्यिक की उपयोगी उदारता में भी मैं किसी से कम नहीं हूँ, किन्तु इतना बड़ा आकस्मिक आघात—मेरे समस्त जीवन के ऊपर मानो किसी ने सपाट से एक जोर का चाबुक मारा ! लगता [illegible] पीठ पर बोझा, सिर के ऊपर सूर्य की अग्नि-वृष्टि, पत्थर व कंकड़ों से भरा ऊबड़-खाबड़ रास्ता, गले के भीतर मरुभूमि, तब भी [illegible] दौड़ रहा हूँ। [illegible] है, [illegible] उसका चिह्न भी नहीं है ! उस दिन क्यों भागा [illegible] बन्द हो गया, पर आज भी मेरे लिए आश्चर्य की बात है। भागने की

भरपूर चेष्टा की। ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वी के प्रकाश-वायु-विहीन कारागार में मैं वन्दी हूँ!

झोला-झझट उतार कर एक स्थान पर बैठ गया। किन्तु बैठने की शक्ति भी और नही थी, देह फैलाकर सो गया। आह, मानो अब उठना नहीं है, सब दुःखो के अवसान आ जा, ओ प्रशान्त मृत्यु! छाया नही, मुख के ऊपर कड़ी धूप पड़ने लगी, जल नहीं, हृदय हा-हाकार करने लगा। किन्तु यह कैसी अशान्ति कैसी चञ्चलता! दुर्वल चित्त आज की घटना को स्वीकार करना क्यो नही चाहता? क्या यह सत्य है कि श्रद्धा और सम्मान से जिसकी पूजा की, वह मूर्ति आज चूर्ण-विचूर्ण होकर धूल मे मिट रही है? हे सत्यनारायण सूर्य, तुम तो जानते हो, उसमे कोई मलिनता नही है! सेवा-सुश्रुपा, स्नेह, दाक्षिण्य और व्यवहार मे वह तो किसी सम्भ्रान्त भद्र महिला स कम नहीं है. तब भी वह पतिता क्यो? उसमे कोई छलना नही, मोह जाल नही, वासना का कोई अभद्र इगित नही—वह तो ससार मे किसी से हीन नही है, अनुपयुक्त नही है! हे सूर्यदेव, तुम बतला दो! तुम आज बतला दो, राधारानी क्या वेश्या है?

तीसरे पहर की धूप म्लान हो आई। सोये हुए ही, बहुत बेचैनी मे लोटने-पोटने एक बार कै की। तब भी, एक बार धूल व बालू मे बैठे-बैठे, आँखो के आँसुओ मे किम्भूतकिमाकार चेहरा लेकर चलना प्रारम्भ किया। अगस्त्य मुनि का मन्दिर और सौरी चट्टी पार हो गई। धीरे-धीरे सन्ध्या घनी हो आई. रास्ते मे और कोई साथी नही दिखाई दिया। आकाश मे चन्द्रमा दिखाई देना चाहिए था. किन्तु देखते-देखते मेघ घिर आये और नमीभरी हवा बहने लगी। मन मे आशा है कि चन्द्रापुरी चट्टी मे ठीक आज पहुँच जाऊँगा। शरीर दुर्वल है, हवा के साथ हिल-डुल रहा है। चारो ओर से अन्धकार घना हो गया, नींद के प्रभाव मे मानो रास्ता चल रहा हूँ। पथ की रेखा कुछ दूर तक दिखाई दे रही है, उसके बाद सब कुछ अदृश्य हो गया है। ब्रह्मचारी कहाँ है? अब और पर्याप्त साहस नहीं होता, ऊपर मेघाच्छन्न आकाश मे चन्द्रलोक बुझ गया है, इतने अन्धकार मे किसी दिन नही चला, बाईं और नीचे वन-वेष्टित नदी कल-कल करती बह रही है, दक्षिण में और सिर के उपर पहाड़ के बाद पहाड अरण्य के अन्धकार से घिरे हुए हैं—शरीर इस बार काँप उठा। अपने पाँवो के शब्द से ही बार-बार निर्जन मे चकित हो उठता है। लाठी के ऊपर जोर देकर साहस नहीं पा

रहा हूँ। भय से कान के भीतर भनभनाहट होने लगी। पाँव काँप उठे। यह क्या, यह कहाँ? नदी का नष्ट किया हुआ पथ खो गया! मन्दाकिनी और चन्द्रा नदियों का संगम, किन्तु किस दिशा को जाऊँ? भयङ्कर गर्जन से हू-हू करती हुई स्वतल और विस्तृत नदी बहती चली जा रही है, देखते-देखते पथ का चिह्न भी अदृश्य हो गया। ऐसा बोध हुआ कि मुख से एक शब्द निकल गया। मुख मानो किसी दूसरे का हो। शरीर काँप रहा है, देह का रक्त भय से क्षण-क्षण मे कोलाहल कर उठता है, गला सूख कर काठ हो गया है, दोनो घुटनो में अब कोई शक्ति नही रह गई है—नितान्त दस वर्ष के बालक की भाँति निरुपाय होकर इस पथ के किनारे खड़े रहते-रहते आँसुओ से मेरी दृष्टि म्लान हो गई। इस प्रकार हिंसक जंतुओ से भरे अरण्य और नदी के गर्भ मे असहाय रूप से मरने की मेरी कभी इच्छा नही थी। विपत्ति मे पड़कर भगवान को पुकारने की बात भी मै भूल-सा गया, उसी तरह भूल गया जीवन की तुच्छता की बात।

वास्तव मे जिस दिन मौत आती है उस दिन हम यह देखते हैं कि जीवन को हम कितनी तरफ से प्रगाढ़ आलिंगन मे बाँधे हुए हैं। हाय रे संन्यास, हाय रे निष्फल वैराग्य!

'कौन है?'

हठात भय से चौंककर मैं थर-थर काँप उठा। एकाएक किसी की आवाज़ सुनकर हृदय धक्-धक करने लगा। एक छायामूर्ति चुपचाप कब से पास में आकर खड़ी हो गई है, लाठी को इच्छानुसार चलाना चाहा, लेकिन हाथ की लाठी शिथिल हो गई। ज़ोर-ज़ोर से साँस चलने की आवाज़ सुनकर यह धारणा हुई कि यह छायामूर्ति मनुष्य मूर्ति है। कम्पित कण्ठ से बोला— तुम कौन हो?

'मै ज़नाना!'

स्त्री! अन्धकार में उसके मुख के पास जाकर देखा। धीरे-धीरे लाठी के ऊपर ज़ोर आया, सीधा होकर खडा हुआ। कौन कहता है मैं 'नर्वस' हूँ! जहाँ तक मैं समझ पाया, लड़की पहाड़ी थी, उम्र अधिक नहीं थी, गले में उसके कई रुद्राक्ष की मालाएँ थीं, सिर के ऊपर बालो के ऊपर एक दडा पर था, सन्तो की भाँति गेरुआ वस्त्र पहिने थी, दोनो हाथ में फूल और रुद्राक्ष के गहने थे, दायें हाथ में कमण्डल और बायें हाथ में एक सिंगा था। नगे पांव। चकित और चंपल लड़की।

'क्या देखता है, साधुजी ?'

'तुम जनाना हो ?'

'जी। यहाँ तुम क्यों खड़ा हुआ है ? कहाँ जाओगे ?'

'चन्द्रापुरी जाना है, रास्ता छूट गया।'

'अच्छा, परदेशी ! आओ मेरी साथ, बतलाते हैं।' यह कहकर भैरवी आगे चलने लगी। किन्तु वह भी पथ नहीं था, मैंने देखा कि एक लीलायितभंगी से नदी की विच्छिन्न शाखा को पार कर जल की ओर वह उतरने लगी। आश्चर्य, मानो उसके लिए कोई बाधा-विपत्ति नहीं है, मानो उसके लिए यह पथ घर के आँगन की तरह ही परिचित है, मुड़ती-झुकती, हिलती-डुलती, हँसती-नाचती आनन्द से वह उतरने लगी। अत्यन्त कष्ट से चुपचाप, सतर्कता से उसका अनुसरण कर नीचे उतरने लगा। बहुत दूर तक उतरने के बाद शेष सारी नदी को ही वह हठात उछलकर पार कर गई—उसके भीतर मानो प्रचंड रक्तधारा थी प्राणों की बाढ़ थी, नदी की क्रीडा थी। उसको लगे तीन मिनट और मैं उतरा दस मिनट में। नदी से उतर कर सतर्कता से दोनों जने चलकर जल पार कर इस पार आये, वह आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। पास ही में एक झरना नीचे बह रहा था, उसके ऊपर मुझे उठाकर उसने चन्द्रापुरी का पथ दिखाकर विदा चाही। विदा तो उसको देनी ही थी, किन्तु हठात इस क्षण मानो मुझको चेत-सा हुआ। झरने के किनारे खड़ी इस अकस्मात आविर्भूत कपाल-कुण्डला की ओर देखकर बोला—तुम्हारा घर कहाँ ?

'बहुत दूर यहाँ से। चलते हैं—जाओ तुम, आराम करो।' कहते-कहते ही वह नदी के प्रस्तर-पथ पर जल्दी-जल्दी चलने लगी। चारों ओर घनान्धकार काले रंग की पर्वत-श्रेणियाँ, उन्हीं के भयंकर गह्वर से उन्मादिनी चन्द्रा का प्रवाह अन्ध वेग से छूटता आ रहा है, उसी नदी के द्वार की ओर वह रहस्यमयी लड़की, कुछ दूर जाकर, रात्रि के अञ्चल के नीचे अदृश्य हो गई। उसका वास-स्थान कहाँ है, कितनी दूर, किस गहन-गम्भीर स्थान में, यह कौन जानता है ? निर्वाक स्तम्भित दृष्टि से केवल उस दिशा की ओर देखता रहा। वह विचित्र घटना भी खुद मेरे लिए एक स्वप्न-सी है।

चन्द्रापुरी में पहुँच कर गोपालदा [illegible] ...ी को फिर। दीर्घ विरह के बाद मिलन। बच गया [illegible] ...ला जाय गोपालदा और ब्रह्मचारी को नहीं छोड़' [illegible] ...र के प

के आसरे बैठे हुए और लोगों को यह घटना सुनाई। किन्तु इससे एक और क्षुद्र नाटक की सृष्टि हुई। अब तक मैं नास्तिक और अधार्मिक करार दिया जाकर उपेक्षित और परित्यक्त हो गया था। इस कहानी को सुनकर हठात सब बूढ़ियाँ बोल उठीं—कौन बाबा, मनुष्य के छद्म वेप में कौन हो तुम बाबा? हम पापी हैं, अधम हैं, बाबा तुम्हीं ने दर्शन पाये हैं उसी मा भगवती के! किस दिशा की ओर वह गई, किस पथ पर, तुमने उसे पकड़ क्यों नहीं लिया बाबा, उसके चरणों की धूल क्यों नहीं ली? अहा, तुम ब्राह्मण, धार्मिक, तुम्हारे समान महापुरुष—हमारे अपराधों की ओर ध्यान न देना बाबा, तुम कौन हो यह हम इतने दिनों तक . . .

हँसी रोककर तथा आँख मूँद कर बैठा था। इस बार दोनों हाथ बढ़ाकर, अभयदान देकर देवजनोचित कंठ से बोला—सम्भवामि युगे युगे!

चारु की मा ने चुपचाप आकर पाँवों की धूल माथे पर लगा ली।

कहीं मैदान और कहीं जंगल के बीच से चलकर भीरी चट्टी पार हो गई। रुद्रप्रयाग से अलकनन्दा को विदा देकर मन्दाकिनी को पकड़ा। मन्दाकिनी के उस पार भीमसेन और बलराम के मन्दिर पड़े थे उसके बाद आई कुण्ड चट्टी। यहाँ से केदारनाथ का बरफ दृष्टिगोचर हुआ। तुषार-किरीट हिमालय, सूर्य किरण-स्नात, दुग्ध-शुभ्र पर्वतमाला, बर्फ की उज्ज्वलता का रोमांचकर, नयनाभिराम रूप। उसके बाद ही फिर चढ़ाई का पथ, वही अति कष्टदायक पथ-अतिक्रमण, चींटी की तरह मन्दगति। कुछ कदम आगे चलना, फिर थोड़ा खड़ा होना, किसी अर्धचेतन यात्री के मुँह में थोड़ा जल डालना शायद कुछ भी थोड़ा-सा पीना, फिर कुछ दूर आगे चलना। इस तरह सब आ पहुँचे गुप्तकाशी की धर्मशाला में। छोटा एक शहर। करीब पन्द्रह-बीस धर्मशालाएँ, कई दुकानें, विश्वेश्वर का प्राचीन मन्दिर, दूर एक डाकघर, सामने तुषार से ढका पर्वत। आकाश मेघाच्छन्न, कभी-कभी धीमा [illegible], नीचे पर्वत के पठार पर चित्रपट की भाँति क्षुद्र एक-एक [illegible] कभी-कभी [illegible] । धर्मशाला [illegible] नहीं हुई और [illegible] । इतने दिनों बाद [illegible] । [illegible] के दरवाजे में प्रवेश किया है, [illegible] है। [illegible] [illegible] है, पथ के ऊपर से [illegible]

दिखाई देता है। दूर उस पार उखीमठ शहर भव्य चित्र की तरह दिखाई देता है। जाड़े के दिनों में यह सारा पथ और शहर बरफ से ढके रहते हैं, मनुष्य और जानवर सब नीचे की ओर चले जाते हैं।

केदारनाथ पहुँचने के लिए हम सब व्यग्र हैं। परस्पर बातचीत हो रही है कि यात्रियों के धैर्य और उसकी शक्ति की अग्नि-परीक्षा नजदीक ही है, इस समय से सबको सजग रहना चाहिये। जो केदारनाथ का दर्शन नहीं करना चाहते, वे इस समय मन्दाकिनी पार होकर उखीमठ से बद्रीनाथ की ओर जा सकते हैं, इसके बाद सिर पटकने से भी कोई उपाय नहीं। सामने भीषण चढ़ाई, प्राणघाती खतरनाक रास्ता, मँहगी खाने-पीने की सामग्री, बर्फीली हवा, प्रकृति का भयावह रूप—अतएव जो दुर्बल हैं, जो डरपोक हैं, जिनको धैर्य कम है, प्राणों की ममता जिनको इस समय महा सकोच में डाल रही है—वे इस वक्त उखीमठ की ओर चले जायँ। कई आदमियों को चलते हुए भी देखा। और एक असुविधा है, गुप्तकाशी से प्राय तीस मील रास्ता केदारनाथ तक जाकर और फिर सतासी मील एक ही रास्ते पर फिरकर आना होता है, अर्थात् उखीमठ न जाने से बद्रीनाथ नहीं पहुँचा जा सकता। झूठमूठ इस सतासी मील पथ को पार करना बहुत कष्टप्रद मालूम होता है। आज तक हम करीब एक सौ बीस मील चल चुके थे, चलने में हमें कष्ट नहीं, किन्तु चढ़ाई-उतराईवाले पहाड़ी रास्ते में एक मील चलना सौगुना हो उठता है। कुछ भी हो, बेला रहते ही हमने गुप्तकाशी से यात्रा की। कुछ दूर जाकर डाकघर देखने से मन एक बार उछल पड़ा, किन्तु किसको पत्र लिखूँ ? मन के भीतर सभी अतल तल में चले गये हैं। जाने दो—जय केदारनाथ की जय ! एक-दो मील आकर नलाश्रम चट्टी में पहुँचा। यहाँ चट्टीवाले के पास माल असबाब की रसीद लेकर और उसको जमाकर, केदारनाथ की ओर जाने की व्यवस्था है, लौटने के समय यात्री अपना माल-असबाब वापस लेकर उखीमठ की ओर जाते हैं। झोला रखकर जाने का सुयोग पाकर महा विपत्ति से बचा, सारे रास्ते में इस झोले और कम्बल ने मुझे भारी तकलीफ दी है।

रसीद तो ली, किन्तु सौभाग्य से चट्टीवाला यदि माल-असबाब वापस न दे, तो मैं बच जाऊँ, और मैं उसका मुख देखना नहीं चाहता ! नलाश्रम से एक मील दूर भेतादेवी चट्टी है, यहाँ एक कुण्ड और प्राचीन मन्दिर हैं। उसके बाद ही फिर चढ़ाई है, चढ़ाई देखते ही सिसकियाँ आने लगती हैं, हृदय का रक्त सूख जाता है। पूरी दो मील की चढ़ाई

के बाद कुञ्जमला चट्टी मिली। सुनने मे आया कि यहाँ भगवती के मन्दिर मे अनेक महात्माओं को देखा जाता है। दिखाई देते हो, इससे क्या, महात्माओ मे मेरी और रुचि नहीं है। यहाँ काठ के बर्तन सस्ते बिकते हैं। कुञ्जमला के बाद फिर उतराई है, चढ़ाई और उतराई का मतलब है एक पहाड को पार करना। यह कहा जाता है कि सब मिलाकर जब तक लाख पहाड पार नही हो जायें, बद्रीनाथ नही पहुँचा जा सकता। दो मील चलने पर मैखंडा मिला। यहाँ महिषमर्दिनी देवी का मन्दिर है और नदी के ऊपर रस्सी के झूले का पुल है। उत्तर दिशा की ओर पथ पर मुडते ही दूर हिम-राज्य दिखाई पड़ता है। धूप मे इसका अपूर्व रूप दिखाई देता है। ऊपर उज्ज्वल नील आकाश, उसके नीचे धवल हिम-रेखा, और उसके नीचे ही हरी अरण्यमय पहाड़ियाँ—पीछे की पटभूमि मे तीन वर्णों का विस्मयकर समावेश। हृदय मे एक ऐसा आनन्द-सा गूँज उठता है जिसकी पहले कभी अनुभूति नहीं हुई थी। और एक मील आने पर फाटा चट्टी मिली। यहाँ एक सरकारी धर्म-शाला और पनचक्की हैं। देखते-देखते सन्ध्या का अँधियारा हो आया। आज यहाँ ही विश्राम होगा। किन्तु आश्चर्य, ब्रह्मचारी आगे चला गया है, कल स ही वह मुझको पीछे छोडकर आगे जाने की चेष्टा कर रहा है, इसका कुछ तात्पर्य समझ मे नही आया, यहाँ से बडलपुर चट्टी साढ़े तीन मील के करीब है। रात्रि सन्निकट है, बडलपुर वह पहुँच पायेगा या नही, यह कौन कह सकता है। चिन्तित मन से गोपालदा और वृद्धियो को लेकर चट्टी मे चला आया। ब्रह्मचारी के मन मे मेरे लिए नाराजी क्यो पैदा हुई, समझ मे नही आया। गोपालदा के साथ भी उसकी अवश्य अधिक नही बनी। भगवान मे उसका पूर्ण विश्वास गोपालदा को मुग्ध नही कर पाया किन्तु मैंने तो उसको अन्तरंग स्वीकार कर लिया है।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब कि अँधेरा ही था, यात्रा शुरू हुई। नदी होने से रास्ते मे चलने मे सुविधा हुई क्योंकि सड़क ही में थकावट नहीं होती। पहले तो शीत से थोड़ा कष्ट होता है इसके बाद शरीर थोड़ा गरम होने से अच्छा लगता है। लँगड़ाते-लँगड़ाते आगे-आगे ही चल रहा हूँ। शून्य मन, ब्रह्मचारी के अभाव का ध्यान बार-बार मन मे उठ रहा है, रास्ते मे हमदम साथी को छोड़ देना बहुत कष्टकर होता है। हमदम होने से दुःख और आनन्द का अनुभव हल्का होता है, इसलिए रास्ते ही मे हम एक दूसरे को सलाम करते हैं। इन दिनों मन

कई स्थानो मे टूटा-फूटा है, कई स्थानो मे जुड़ा है। थोड़ा गलकर प्रवाहित हुआ है, थोडा जमकर पत्थर हुआ है। आवेग सूख गया है, भावुकता दब गई है, दुःख और आनन्द का चेहरा इस समय करीब एक-सा ही है। धीरे-धीरे प्रातःकाल का प्रकाश फूटा, आकाश मे प्रभात का निःशब्द समारोह प्रसारित हुआ, पर्वत-शिखर धूप की लालिमा मे चमकने लगे—हम चले रहे हैं मन्थर गति से। बदलपुर चट्टी मे आकर कुछ मिनट विश्राम लिया। विश्राम लेकर फिर अग्रसर हुए। ऐसा मालूम होता है कि रास्ता कुछ मैदान-सा है, पाँवो को उतना कष्टमय नही लग रहा है। हम सिर झुकाकर चल रहे हैं, किसी बात का खयाल नही, केवल चल रहे हैं, चलने के सिवा और हम लोगो का कोई काम नही। रास्ते की तरफ कुन्द की झाडियाँ, वे हो तो क्या, चल पैदल चल। गोरीफल, दाडिम और अखरोट के वन—अच्छे तो हैं, चल, पैदल चल। कही हू-हू शब्द से जल गिर रहा है, कही पहाड की देह मे झरना फूट पडा है, फूटता रहे, हमें तो चलना है। चट्टी से एक पहाडी कुत्ता साथ-साथ आ रहा है, इसी तरह जैसे कि युधिष्ठिर के साथ छद्मवेषी धर्म कुत्ते के वेष मे चला था, कितनी दूर जाएगा यह कौन बतला सकता है। उस दिन हिसाब लगाकर मैंने यह मालूम किया कि एक कुत्ता आहार के लोभ मे करीब बीस मील तक रास्ते मे हमारे पीछे-पीछे चला। रास्ते मे बहुत से यात्रियो के साथ एक-एक कुत्ता दिखाई देता है। यह पथ महाप्रस्थान का ही पथ है, इसमे जरा भी सन्देह नही। चलते-चलते पहाड की एक खुली जगह मे आ पहुँचे। गोपालदा खडे-खडे ही घोडे की तरह हाँफ रहे थे, यात्राश्रम से उनकी दृष्टि धुँधली पड गई थी। उस विपुल अवकाश के समय शान्ति से खडे होने पर, उत्तर दिशा की ओर दूर-दूर तक दृष्टि गई। रास्ता अर्द्ध चन्द्राकार होकर मुड गया है। बहुत दूर जाने पर पथ दो भागो मे बट जाता है। एक पगडण्डी के आकार मे ऊपर को चढ गया है और एक नीचे मन्दाकिनी की ओर चला गया है। कुछ ऐसा मालूम हुआ कि दोनो मार्गो के उस संयोगस्थल पर एक झाड से सिन्दूर के समान ब्रह्मचारी मुड रहा है। पीठ पर हरा कम्बल झूल रहा है और सर्वांग लाल रंग के गरुए वस्त्र दिखाई दे रहे हैं। ब्रह्मचारी को छोडकर और कोई नही है।

दो बार जोर से मैं चिल्लाया, हाथ से ठहर जाने का इशारा भी किया किन्तु सब बेकार, उसके कान मे मेरी आवाज नही गई, वैसे ही वह नीचे के रास्ते की ओर चलने लगा। यदि दौडकर उसे पकडने को

उपाय होता तो उसे रोक लेता. इस तरह से उसको निष्ठुर नहीं होने देता। मुझे छोड़कर उसके चरित्र में से और कोई आनन्द नहीं पाता, मैं उनको प्यार करने लगा हूँ।

करीब नौ बजे के समय हमने त्रियुगीनाथ की पगडंडी का रास्ता पकड़ा। पथ की एक शाखा नीचे मन्दाकिनी के किनारे को चली गई है। पहले विशेष समझ में नहीं आया. किन्तु करीब सौ-दो सौ गज चढ़ाई चढ़ने पर मैं और गोपालदा परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। पथ जिस प्रकार टेढ़ा-मेढ़ा और ऊँचा-नीचा है उसी प्रकार दुरारोह भी है। दोनों ओर घने जंगल, कहीं-कहीं पत्र-पल्लवों के भीतर झरनों की झर-झर, गिरगिट की अविश्रान्त पुकार, छायामय निःशब्दता! दीवार पर जिस तरह छिपकली उठती है, उसी तरह उठ रहे हैं, चढ़ाई का पथ प्राय सीने को स्पर्श करता है। रुकते हैं और फिर रेंगते हैं। यह तो तीर्थयात्रा नहीं, पूर्व-जन्म के पापों का दंड है। मनुष्य के ऊपर यह है नियति का अन्याय, अत्याचार। एक जगह पर खड़ा होकर हठात झुँझला कर कह उठा—त्रियुगीनाथ नहीं आता तो क्या होता, किसने आने को कहा था? गोपालदा के सिवा और कोई पास में नहीं था, चार-पाँच स्त्रियाँ पीछे थीं। वे बोलीं हँसी में ही बोलीं—दिमाग खराब हो गया होगा, अब नहीं होगा। फिर चल पड़ा। पाँव नहीं फैला सकता, कमर में दर्द है, सीना कुड़कुड़ा रहा है, इच्छा होती है कि इन सबका खून कर डालूँ—इन पुण्य-लोभियों, इन अन्धों और इन मूर्ख यात्रियों का। आह, आग की तरह गरम निश्वास : नाक, तालू तथा गला सब सूखकर काठ हो गये हैं, दाँत मींचकर भी मुख थरथरा रहा है, सिर के बालों के भीतर और देह में जूँ कुलबुला रहे हैं, क्लान्त शरीर, मैले वस्त्र, लाठी को पकड़े-पकड़े ही हाथ में फफोला हो गया है—अब नहीं सहा जा सकता, गला सूख गया है मृत्यु और कितनी दूर है?

पीड़ा जिस समय मनुष्य की अनुभूति की सीमा को पार कर जाती है, उस समय उसकी अवस्था कैसी होती है? वह कैसी होती है, उसको नहीं बतला सकता। सीढ़ी पारकर आकाश की ओर उठ रहा हूँ। आकाश छूने की और देरी नहीं! सोच रहा हूँ कि इससे भी भयंकर क्या यंत्रणा की कोई कहानी हो सकती है! नाखूनों के भीतर आलपीन घुसाने से मनुष्य कैसी यन्त्रणा पाता है? आधा शरीर मट्टी में हो, शेष आधा कुत्ता नोच रहा हो। उस समय अपराधी किस प्रकार रोता है? शरीर की खाल खींचने पर मनुष्य कैसी आवाज़

करता है ? रंग-बिरंगे में सभी ने लोगों से [illegible] गैरिक [illegible] चहिदार तारों के संग में झूलते-झूलते निकल जाता है तब उसका क्या होता है ?—बस, और तमाशा नहीं होती ! जोर से [illegible] एक बार हँस उठा । गोपालदा [illegible] मुख हुए बैठे हुए थे ।

चार मील विशाल चढ़ाई इस तरह पार कर त्रियुगीनारायण पहुँचे । गाँव का नाम है [illegible] । गंगोत्री होकर और एक पथ यहाँ आकर मिल गया है । मन्दिर के चारों ओर तो गाँव है । मेरे पाँव गतिहीन हो गये । मक्खियों से बेहद परेशानी थी । भोजन पकाने की और सामग्री थी नहीं । मन्दिर दर्शन करने को गया तो देखा कि भीतर अन्धकार है, मन्दिर में एक बड़े पत्थर के गड्ढे में धूनी जल रही है । जल रही है त्रेता युग से कभी भी नहीं बुझती । जाड़े के दिनों में आग में लकड़ी रखकर पण्डे नीचे चले आते हैं ग्रीष्मकाल में आकर मन्दिर के दरवाजे खोलकर देखते हैं कि राख में आग दबी पड़ी है बस यही कथा प्रचलित है । यह कथा कहाँ तक सच अथवा झूठ है इसका निर्णय करने की रुचि भी नहीं थी उत्साह भी नहीं था । जान पड़ा कि सारा महाभारत और रामायण ये दो ग्रन्थ चूर्ण-विचूर्ण होकर सारे भारत में फैल गये हैं । भारत की सभ्यता और शिल्पकला धर्म और आचार, शास्त्र और दर्शन साहित्य और विज्ञान इन्हीं दोनों महाकाव्यों को केन्द्रित कर बनाये गये हैं इस बात में कोई सन्देह नहीं है । मन्दिर का दर्शन कर दुकानदारों के पास से पूरी और तरकारी खरीद कर चट्टी में आया । करीब तीन बजे होंगे । इससे क्या आज तो पादमेकम् न गच्छामि ।

दूसरे दिन प्रातःकाल जाड़े में सिकुड़कर त्रियुगीनाथ से जल्दी चले । उतराई से पाँवों की व्यथा बढ़ने लगी चढ़ती है तो बड़े जल्दी से नीचे उतरकर चल पड़ा । सभी लोग जल-प्रवाह की तरह पहाड़ों पर ऊपर से नीचे उतर रहे हैं । उतराई में सभी को थोड़ा आराम है, केवल मुझे ही दुःख है । आज गोपालदा मेरी कष्ट-कहानी को सुनने के लिए तैयार नहीं, मालूम हुआ कि उनका चलने का अभ्यास मुझसे अधिक है । आज व्यवस्था हुई है कि गौरीकुण्ड पहुँचकर मध्याह्न का भोजन किया जाय । मानो चलना ही मुख्य है, भोजन और शयन गौण है । दो मील नीचे रास्ता तय कर एक छोटा मन्दिर मिलता है, उसी के किनारे से मन्दाकिनी की ओर रास्ता नीचे चला है । सर्प के आकार की अत्यन्त सकीर्ण पथ-रेखा है, दोनों ओर पहाड़ी वन है । गाँव के कोई-कोई लड़के-लड़-

कियाँ पाई-पैसा की भिक्षा प्राप्त करने के लिए दौड़कर आये, बड़ी-बड़ी लड़कियाँ उनको पीछे से सिखा देती हैं, भिक्षावृत्ति इनका पेशा नही, विलास है। करीब एक मील पगडंडी रास्ता लुढ़कते-पुढ़कते उतरकर मन्दाकिनी का पुल मिला। रुद्रप्रयाग के बाद यही पहली नदी है, इसे पार कर फिर पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। मील का पत्थर देखा गया, यहाँ से केदारनाथ केवल करीब नौ मील है। पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते दिखाई देता है कि, पीछे की ओर से और एक तेज नदी है, नाम दूध-गगा है, यह मन्दाकिनी की ही शाखा है—आकर मन्दाकिनी से मिली है। हम दूध-गगा के किनारे ऊँचे पर्वतो की देह पर चल रहे हैं। करीब दस बजे का वक्त होगा, सर्द हवा चल रही है; आकाश सूर्य के प्रकाश से उज्वल है, हम पर्वतों के गहन जंगलो के भीतर से चल रहे हैं। इस समय मेरी आगे चलने की पारी है, चढ़ाई मे पाँवो मे तकलीफ कम मालूम देती है, एक-एक अग्रगामी यात्री को—पीछे छोड़कर आगे-आगे चल रहा हूँ। वन-जगलो के चक्कर मे, छाया-छाया मे सभी भिन्न-भिन्न टुकड़ियो मे तटस्थ भाव से चल रहे हैं। सुना गया कि इस तरफ जानवरो का भय है।

प्राय दोपहर की वेला तक पहुँच गया गौरीकुण्ड के ग्राम मे। गाँव की गोद मे से ही मन्दाकिनी बहती है। नदी छोटी है किन्तु प्रचंड वेगवती है। जल बर्फ से भी ठण्डा, अभी-अभी बर्फ से पिघला हुआ, स्नान करने का उपाय नही। रुद्रप्रयाग से ही हमारा नहाना बन्द हो गया है। गौरीकुण्ड मे, गौरी के मन्दिर के पास ही एक चट्टी मे आ पहुँचा। सब कुछ प्राचीनता की साक्षी दे रहा है। केदारखंड में लिखा हुआ है कि देवी पार्वती के मन्दाकिनी तट पर ऋतु-स्नान करने से इस स्थान का नाम गौरीतीर्थ हुआ है। जिसका नाम गौरीकुण्ड है उसका दर्शन मिला इस क्षण। एक बड़ा ऊष्ण जल-कुण्ड है। किसी अदृश्य पर्वत शिखर से एक गरम जल-धार फूटकर यहाँ नीचे उतर आई है। यात्री लोगो ने उसी गरम जल के पास बैठकर तर्पण किया। वास्तव मे, इस शीत प्रधान देश मे जल से धुआँ का निकलना देखकर मन उल्लसित हो उठा। जल इतना गरम है कि उसके भीतर हाथ-पाँव नहीं रखे जा सकते। फिर भी कोई-कोई यात्री पुण्य के लोभ से अपनी बहादुरी दिखाने इस गरम जल मे उतर कर निकलते रहे। पुण्य सचय तो वे करेंगे ही।

इस वेला और विश्राम नहीं, सभी के शरीर मे इच्छा है दम पर

पड़ें। मुख और आँखों पर सुई की भाँति बर्फीली हवा चुभ रही है, लाठी नहीं सँभाली जा रही है। पगडंडीवाला पहाड़ी पथ, बहुत लम्बी चढ़ाई नहीं, भूल-भुलैये में चलने की तरह घूम-घूमकर ऊपर उठ रहे हैं। सीने में काफी दम है, लेकिन पाँव थक गये हैं। थोड़ा खड़े हो जायँ फिर चढ़ेंगे। आज मैं आगे-आगे चल रहा हूँ। व्यथा नहीं, थकावट नहीं, उत्साह-हीनता नहीं, पीछे का मार्ग कुहरे में छिपा हुआ है, सामने हिमालय की अनन्त धूमिलता, रास्ते के किनारे-किनारे ही बर्फ के स्तूप बने हुए पड़े हैं, झरने साबुन के फेन की तरह बह रहे हैं—आज मैं आगे-आगे। आज मेरे शरीर में लौट आई है पुरातन शक्ति, बल, दुरन्त उद्दीपना तथा अपरिमेय प्राण-लीला। कहाँ खो गई है पीछे की पृथ्वी, कहाँ विलीन हो गया है पिछले जीवन का समाज-संसार और आत्मीय-जनों तथा बन्धुओं का दल—आज मैं और विश्राम न लूँगा, तुच्छ देह के अभाव-अभियोगों की ओर दृष्टि नहीं डालूँगा, आज बाढ़ की तरह अप्रतिहत गति से दौड़ पड़ूँगा। समस्त जीवन से इस बार मुक्ति पाई है सब बन्धन खुल गये हैं लोभ, मोह व स्वार्थ को सांसारिक पथ पर छोड आया हूँ पाप-पुण्य, दुःख और आनन्द का कोई प्रश्न नहीं। इस समय सरिता दौड़ पड़ी है महासागर की ओर अन्धकार दौड़ा है प्रकाश की ओर, जीवन और मृत्यु भाग रही हैं महानिर्वाण के पथ पर, मनुष्य भाग पडा है स्वर्ग को ! बाधा-विपत्तियों की अब पर्वाह नहीं करूँगा, स्वर्ग-राज्य की प्रतिष्ठा की कल्पना लिये चल रहा हूँ, देह से देहान्तर में आया हूँ, आत्मा को किया है आविष्कृत।

एक बार खड़ा हुआ। भागते-भागते सब को पीछे छोड़ आया हूँ। चारों ओर के सीमाहीन कुहरे में साथी न मालूम कहाँ गुम हो गये हैं, केवल दोनों ओर की सामान्य पथ-रेखा दिखाई दे रही है। कहीं भी वृक्ष-लता नहीं, वन-अरण्य नहीं, जीव-जानवरों का चिह्न मात्र नहीं, केवल हिमाच्छादित पर्वतमाला, असंख्य झरने चीत्कार करते-करते रास्ते के किनारे उतर आये हैं। बाएँ-दाएँ सामने-पीछे बादलों की घन-घोर घटाएँ, विलुप्त आकाश, निश्छिद्र पृथ्वी। इस बार चल रहा हूँ अन्धे की तरह टटोल-टटोलकर गर्जनमत्त वायुवेग से और अपने को नहीं सँभाल पाता। धीरे-धीरे प्रकाश प्रखर हो उठा। वह प्रकाश आकाश का प्रकाश नहीं था धूप की उज्ज्वलता नहीं थी विद्युत-वह्नि का प्रकाश भी नहीं था,—वह एक नवीन अलौकिक प्रकाश था हिम की शुभ्रता

हाथ मे लाठी है, किन्तु उसको हिलाने-डुलाने की शक्ति नहीं रह गई है, पाँवो के नीचे वरफ के दवने के कारण मच-मच आवाज़ हो रही है, अन्धकार से हिम के प्रकाश मे आने पर फिर आँखे वन्द हो गईं—मुख से एक प्रकार की आवाज़ निकालता हुआ धर्मशाला मे चला आया।

छोटे पत्थरो के घर वरफ के गर्भ मे समाधिस्थ हो गये है! भीतर हम कई यात्री है। गोपालदा और वूढियाँ कम्वल ओढ़कर सिकुड़ कर काँप रहे है, किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता, सभी के आँखो और मुख पर प्राण-भय के चिह्न दिखाई दे रहे है। वाहर मेघाच्छादित आकाश, वरावर चुपचाप हिम गिर रहा है—जहाँ तक कुहरे के भीतर देखा जाता है, पत्थरो के घरो की छतें, खिडकियाँ, दरवाजे, पथ-घाट, दुकानो की कच्ची छतें कठोर स्तूपाकर हिम से ढकी पडी हैं। कोई-कोई स्थानीय लोग लोहे के हथियारो से वरफ काटकर अपने आने-जाने का रास्ता ठीक कर रहे है। प्रत्येक दिन दो वार चार वार उनको हथियार काम मे लाने पडते हैं। सभी यदि इस देश मे निष्क्रिय होकर वैठ जायँ, तव एक दिन वरफ उनको अपना ग्रास वना ही लेगा।

इस समय अमरसिंह कई कम्वल और लकडी ले आया। पडे इस देश मे विना मूल्य केवल उधार देकर यात्रियो की सहायता करते है, लकडी भी वहुत-कुछ व इसी तरह दे देते है। कम्वल तो अमरसिंह ने दिये किन्तु सहज मे उनका स्पर्श न किया जा सका, वे भी वरफ हो गये थे, छूते ही हाथ सिकुडने लगते, शरीर पर चिपकाने से शीत हड्डियो मे घुसने लगता था। अमरसिंह ने लोहे के एक खपरे मे लकडियो को जलाया। आग को देखकर हमारे आनन्द का क्या ठिकाना! वह मानो मृतसञ्जीवनी थी, वह मानो हम सभी की लुप्त आयु थी। लकडी इतनी ठंढी थी कि जल ही नहीं पाती थी, तव भी उस जरा-सी आग के चारो ओर यात्री जाकर उसे घेर कर वैठ गये, कोई उसमे अपना हाथ घुसा देता था कोई पाँव फेंक देता था—हाथ-पाँव जल जायँ, झुलस जायँ, कोई परवा नहीं आग को लेकर तकरार-तकरार छीना-झपटी तथा मनोमालिन्य होने लगता था। एक का शरीर ज्यादा गरम हो जाता है तो दूसरा ईर्षा से जल उठता है। वूढी ब्राह्मणी के वारे मे यह सन्देह हुआ कि वह शायद इस आग को सवके पास से छीनकर अपने शरीर के ऊपर ही उँडेल लेगी। इस वीच यात्रियो मे से सवको वूढी ब्राह्मणी का पर-पीडन तथा उसका स्वार्थ विदित हो गये। झुकी हुई कमरवाली

चारू की मा इस समय तक ठंड से कम्बलो के नीचे लुकी पड़ी थी. इस बार हठात एक कम्बल हाथ मे लेकर पागलो की तरह उठकर वह आग की तरफ आई. कम्बल को अंगारो के बीच घुसेड़ दिया. एक रोआं भी उसका नही जला. बूढ़ी ब्राह्मणी के हां-हां करते हुए उठते ही उसने कम्बल को ऊंचा उठाकर कुछ देर तक आग मे तपाया उसके बाद फिर आगे आ गई। काठ की भांति कठिन और निश्चल होकर अभी तक एक तरफ बैठा हुआ था. चारू की मा ने हठात वह कम्बल खोलकर मेरे शरीर पर ओढ़ा दिया। कहने लगी—सब आग को वह चाटी जा रही है. तुम भी मनुष्य हो तब फिर ..कम्बल जरा भी गरम नही हुआ. क्यो ब्राह्मण ठाकुर ? यह कहकर वह फिर. कम्बलो के उसी ढेर के नीचे घुस पड़ी।

कृतज्ञता प्रगट करने की भाषा तो शायद थी किन्तु शक्ति नही थी। केवल शीत-कातर मुंह से इस स्नेहमयी वृद्धा की ओर देखा। यही मेरु-दण्ड भग्न चारू की मा कङ्काल शरीर को लेकर बराबर चल रही है, तिस पर भी आश्चर्य तो यह है कि उसके मुख पर सदा हंसी दिखाई देती है और बातचीत मे मधुरता। इस वृद्धा को सभी दुतकारते-फटकारते हैं, सामान्य कारण पर भी धमकाते और उस पर शासन करते हैं. बात-चीत मे खास उक्तियां भरने के कारण वह अनेक लोगो के लिए पागल है. पैसा-पाई खर्च करने के बाद वह हिसाब नही रखती इससे ब्राह्मणी मा की दृष्टि मे वह अभागिनी है इस पर भी यहां-वहां से यह दिखाई देता है कि वह यात्रियो के जूठे बर्तन मल देती है, कभी-कभी मसाले पीस देती है बिना कहे सबकी सेवा कर वह सबको स्वस्थ रखने की चेष्टा करती है। यह बिलकुल साधारण परिश्रम है किन्तु थके-मांदे [illegible] यात्रियो के लिए यह महान उपकार ही सिद्ध होता है।

घर चारो ओर से बन्द है, पत्थरो का बना मजबूत घर है [illegible] भी एक छेद नही, बाहर की हवा से सभी बाघ की भांति भय खाते हैं—उसी [illegible] घर के भीतर आग जलाकर सभी बैठे रहे ; [illegible] और आग से जब भीतर थोड़ी गर्मी आई तब [illegible] आवाज निकली। इस समय [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

हिमपात के बदले वर्षा होती है, कभी वर्षा के बदले हिमपात, वही हिम देखते-देखते जम कर सख्त बरफ में परिणत हो जाता है, वर्षाकाल के अन्त तक केदारनाथ में मनुष्यों का समागम रहता है, शरत्काल के प्रारम्भ होते ही सभी नीचे उतर जाते हैं. पशु पक्षी और मनुष्यों का चिन्ह तक नहीं देखा जाता। घर बरफ के नीचे कई महीनों तक अदृश्य रहते हैं। ये घर और रास्ते अनेक शताब्दी पूर्व के बने हैं. किन्तु आज भी जिस प्रकार नये से लगते हैं, उसी तरह साफ-सुथरे भी हैं, कहीं भी टूटने-फूटने का चिह्न नहीं. बहुत सम्भव है कि एक ही ऋतु की आवहवा से उनकी आयु इतनी दीर्घ हो गई हो।

सारे दिन आग जलाकर, कम्बल ओढकर घर के भीतर अकर्मण्य बैठे रहे। कब दिन का चौथा पहर संध्या में परिणत हो गया और संध्या कब रात्रि में परिणत हो गई—यह कुछ नहीं मालूम हो सका। आँखें नींद से भारी अवश्य हो रही थी किन्तु ठण्ड से नींद न आ सकी। हाथ-पाँव हिलाने की शक्ति भी लुप्त हो चुकी। शीत के असह्य क्लेश और पीडन से वह भयंकर रात्रि व्यतीत हुई।

❀ ❀ ❀

उसके बाद और कुछ न कहूँगा। उस दिन प्रातःकाल वही आकाश का अनियंत्रित दुर्योग, हिमपात, मेघान्धकार तथा ओलों का गिरना इन सबके होते हुए किस प्रकार वहाँ से भाग चले. किस प्रकार उतराई के मार्ग से रामबाड़ा पार होकर सीधे गौरीकुण्ड में आकर फिर रुके. उसके वर्णन करने की अब जरूरत नहीं। जहाँ से हम पहले चले थे उसी से लौटे भी. दो दिन का रास्ता पारकर चुकने के बाद एक मध्याह्न को हम उसी नलाश्रम चट्टी में आ पहुँचे। इसी स्थान में हम अपनी कुछ पोटलियाँ-मोटलियाँ छोड गये थे। अब और ठंडा नहीं आकाश नीलम की तरह झलमल कर रहा है, सुन्दर आराम देनेवाली धूप है। फिर दिखाई दी अरण्य की सुस्निग्ध श्यामलता—वसन्तकाल को हमने फिर वरण किया। अब फिर नया रास्ता है। दक्षिण का मार्ग गुप्तकाशी को गया है, सामने का पथ बहुत गहराई में मन्दाकिनी के तट की ओर चला गया है। फिर वही प्रचंड मक्खियों की परेशानी शुरू हुई. पहले की तरह ही सिर से लेकर पैर तक कीडे-मकोडों की परेशानी, देह में खुजली लगना, घुटनों में बडी व्यथा। नलाश्रम चट्टी में खा-पीकर उसी पुराने झोले-झक्कड को कन्धे पर लटकाकर इस उतराई के रास्ते में फिर यात्रा करने लगे। सुनने में आया कि मन्दाकिनी पार

होने पर उखीमठ यहाँ से केवल तीन मील दूर है। आज हमको उखीमठ पहुँचना ही होगा। केदारनाथ से वापस आ गये हैं, इस बार नवीन उत्साह है, अब सीधा बद्रीकाश्रम ही चलेंगे, और कोई बात नही होगी, यही एक लक्ष्य है।

किन्तु हाय रे तीन मील! उलटते-पलटते यात्री उतरते जा रहे हैं, किन्तु तीन मील पूरे ही नही होते। यात्रियो के उत्साह को जीवित रखने के लिए किस मिथ्यावादी ने यह बात गढ़ दी है कि यह दीर्घ पथ केवल तीन मील का है? पगडण्डी के पथ पर घूम-घूमकर जब मन्दाकिनी के पुल पर हम लोग आये तब हम काफी थक गये थे। पुल पार होते ही रास्ते का स्वरूप बिलकुल बदल गया। सीधा खड़ा पर्वत, भारी चढाई, ऐसी चढ़ाई कि उसकी भीषणता का अनुमान करना भी कठिन है। एक हाथ मे लाठी और दूसरे हाथ से रास्ते के ऊपर सहारा ले-लेकर चल रहा हूँ। यह तो चलना नही, रेंगना है। ऐसी भीषण चढ़ाई को हम गत दो दिनो मे पार नही कर सके। चुपचाप रेंग रहे हैं, बीच-बीच मे कोई दुःखी यात्री मुख से एक प्रकार की आवाज कर उठता है—फाँसी की रस्सी से लटकने के वक्त अपराधी के मुख के भीतर से किस प्रकार की आवाज निकलती है? चलते-चलते देखता हूँ तो पथ की धार पर खिदिरपुर की वही निर्मला बैठकर रो रही है। एक तो वह परिश्रम के भय से भोजन बनाकर खाती नही, उसके ऊपर यह चढ़ाई, अहा बेचारी!—बेचारी! अभागिनी को बहुत कष्ट है, बहुत! मरने को क्यो आई? मर तू, जा मर, चूल्हे मे जा!

फिर एक-एक कदम सावधानी से चल रहा हूँ। कमंडल का जल समाप्त हो चुका है, गला सूख गया है, दोनो आँखो में ज्वाला है—होने दे यह सब, चल, आगे चल! गोपालदा कहाँ हैं? वही जगली भालू की तरह कुत्सित मनुष्य? उनका चेहरा ऐसा हो गया है मानो अध-जला रखा हुआ एक कम्बल। पाप, यह सब पाप! मेरे दोनो ओर पाप की शोभा यात्रा, कलुष कालिमा की प्रदर्शनी, असुन्दर और अश्लीलता का मेला। यह कोई आनन्द नही देते, दुःख देते हैं, इनके चेहरो पर समस्त जीवन के पापो की छाप है, कुकर्मों का दाग है, लिप्सा, लोभ और वासना के श्मशान, संसार इन्होने घृणा कर छोड़ दिया, तभी तो ये लोग उस पाप के बोझ को हल्का करने के लिए तीर्थों मे घूम रहे हैं। इनके ऊपर देवताओ की दया तथा करुणा होगी? दया और करुणा क्या इतनी सुलभ हैं? उस दिन तुम भाग्यहीन क्यो

थे—जिस दिन तुम्हारे जीवन में रूप की उज्ज्वलता थी, मन का ऐश्वर्य था; जिस दिन था तुम्हारा यौवन? यौवन में क्या किया?

थोड़ा खड़ा होने को जी चाहता है, श्रम से छाती फटी जा रही है, यह होता रहे—फिर घोंघे की चाल से आगे बढ़ूँ। उस पार दूर पर्वत के शिखर पर गुप्तकाशी का छोटा-सा शहर दिखाई दे रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि न जाने कितने समय और कितने दिन आगे उसी शहर को पीछे छोड़ आया, गत जीवन के पृष्ठों में वह मानो सामान्य एक स्मृति की तरह जड़ा रहा। प्रतिदिन हम पूर्व दिन को भूल जाते हैं, प्रति प्रभात को हमारा नव-जन्म होता है। हम मानो चिरकाल के तीर्थयात्री हैं, चिर-तीर्थ-पथिक हैं, जन्म-जन्मान्तर पारकर चिर-सुन्दर के चरणों की ओर चल रहे हैं, इसी तरह चली थी एक दिन श्रीमती विरह के शत वर्ष पार होने पर श्रीकृष्ण के श्रीचरणों में आत्माञ्जलि देने के लिए। प्रेम की तपस्या ही ऐसी है, वेदना में ही उसका रूप खिलता है, उसके हृदय में दुःखलोक है जो चिर-दुर्लभ है, जिसके लिए यह दुर्गम पथ-यात्रा, यह पीडन है, जिसके लिए यह यन्त्रणादायक पथ की प्राणान्तकर तपस्या है, उसी रूपातीत रूप को मैं चाहता हूँ, वह मेरी आशा की परितृप्ति है, मेरी सबसे बड़ी और अन्तिम प्राप्ति है। आज के इस यात्रा-पथ की ओर देखकर अकस्मात जीवन का रहस्यमय गति-तत्व मानो आँखों के सामने उद्घाटित हो उठा। नारी की गति मिलन के पथ पर पुरुष की गति विरहलोक में। नारी चल रही है परम पुरुष के चरणों में आत्मदान करने के लिए, पुरुष चलता है परम ज्योतिर्मयी को आविष्कार करने के लिए। मिलन के आनन्द में नारी अपने को अतिक्रम करती है, आविष्कार के आनन्द में पुरुष अतिक्रम करता है जीवन को। नारी सृजन करती है प्रेम का सुकोमल मर्त्यलोक, पुरुष सृष्टि करता है विरह का सुदूर स्वर्गलोक! नारी की तपस्या आनन्दमय बन्धन है, पुरुष की दुःखमय मुक्ति है।

रहने दो स्त्री-पुरुष का गति-तत्व। हृदय का रक्त सूखने पर, दुस्तर पथ पार होने पर, जिस समय ऊखीमठ की धर्मशाला में आकर पहुँचा, उस समय दिन के समाप्त होने में और देरी नहीं थी। बहुत छोटा शहर नहीं। कई विशृङ्खल नागरिक साज-सरजाम इधर-उधर बिखरा पड़ा है। जैसे, एक बाजार, थाना, डाक-खाना, अस्पताल और कम्बलीवाले का सदाव्रत। ऊखीमठ का संस्कृत नाम उषामठ है। प्राचीन काल में यहाँ बाणासुर की राजधानी थी।

उसकी कन्या उषा को श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने अपहरण किया था। श्रीकृष्ण के ही उपयुक्त वह पौत्र था। हमारी धर्मशाला से बिलकुल जुड़ा हुआ एक भारी मन्दिर था। इसी मन्दिर मे केदारनाथ के पुजारी रावल महाशय का वास-स्थान है. शीतकाल मे केदारनाथ के प्रति पूजा यहीं से निवेदित की जाती है। आज तक हमने कुल अठारह दिनो की यात्रा की है। अठारह दिन पूर्व हमारी मृत्यु हो गई थी, हम सभी प्रेतात्मा हैं, आज यदि कोई आत्मीय हमे देखें, तो हमे न पहचान सकेंगे और मुख फेर कर चले जायेगे। हम भी उन्हे नही पहचानेंगे, पहिचान लेगे तो वे भयभीत होकर भाग जावेंगे, पूर्वजन्म के परिचय को प्रेत जन्म मे क्यो लाया जाय ? मन्दिर मे कुछ देर टहल कर बाहर आँगन मे आकर बैठ गया। पास ही मे एक दुकान है, दुकान अच्छी है, उसी के नीचे लकडी की एक चौकी का आश्रय लिया। मन्दिर के पास ही पुलिस का थाना है, इसलिए जमादार और दारोगा ने चौकी के पास बैठकर बातचीत शुरू कर दी। मालूम हुआ कि थाने मे खर्च तो है किन्तु उससे आमदनी नही है, माहवारी वेतन देकर सबको अब अधिक दिनो तक नही पाला जा सकता है। थाने की दरिद्रता का हाल सुनकर यहाँ के जनसमाज के सम्बन्ध मे अच्छी ही धारणा हुई। चोरी, डाके और अन्य सामाजिक अपराध कम होते हैं. गढवाल ऐसा ही देश है।

दारोगा बाबू के हाथ मे एक पुराना अँग्रेजी समाचार-पत्र देखकर चकित रह गया। तब क्या हम मर्त्यजगत मे वास्तव में जीवित अवस्था मे हैं ? आश्चर्य, आज इतने दिनो के बाद पहली बार कागज का टुकड़ा देखा . हिमालय मे कही भी कागज नही : कागज मानो बाहर के संसार का प्रतिनिधि बनकर आँखो के सामने खडा हुआ। कगाल की तरह हाथ फैलाकर एक बार समाचार-पत्र को देख गया। कितनी चाह और कितना आग्रह ! समाचार-पत्र लाहौर का 'ट्रिब्यून' था। पंजाब, बंगाल विलायत, अमेरिका—सभी मानो आलिंगनबद्ध हो रहे हो। महात्माजी जेल मे हैं। पंचम जार्ज का स्वास्थ्य अच्छा है। एक लडकी हवाई जहाज मे विलायत से आस्ट्रेलिया तक उड़ी है। मेदिनीपुर मे मजिस्ट्रेट हत्याकांड। मुसोलिनी के मुख पर ऐतिहासिक हँसी देखी गई। गोलमेज कान्फ्रेंस का परिशिष्ट। चीन के शहरो मे जापानी बम-वर्षा। डी वेलरा। सुभाष बोस का कष्ट।—सवादो की ओर देखकर अपनी प्रिय पृथ्वी के देह स्पर्श को अत्यन्त आनन्द के साथ अनुभव करने लगा। मेरी आँखों मे आँसू आ गये !

समाचार-पत्र को लौटाकर चुपचाप बैठा रहा। शरीर बहुत थक गया है, चक्कर-सा आ रहा है. आज इस सामान्य रास्ते को तय करने में अतिरिक्त पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ जितने दिन जाते हैं उतने ही अनुपात मे सहज मे थक जाता हूँ। कष्ट-सहन करने की शक्ति भी कम हो गई है। शरीर मे असमय मे ही वृद्धावस्था तथा जीर्णता आ गई है। इसी तरह कौतूहल और आकांक्षा लेकर एक जगह आ पहुँचूंगा और ठीक इसी तरह जाने के समय अवहेलना के साथ छोड़कर चला जाऊँगा—मन मे जरा भी दाग नहीं रहेगा। हम सभी जगह एक दुष्प्राप्य-सी वस्तु को खोजते फिरते हैं, कहीं भी उसको नहीं पाते—हमारी एक आँख मे आशा है तथा दूसरी मे आशा-भंग का मनस्ताप। यह ढूँढ-खोज एवं व्यर्थता ही जिन्दगी का असली रूप है। जो पथ हमारे जीवन से मृत्यु की ओर चला गया है उसके दोनो तरफ कितना आना-जाना है कितना जानना-सुनना, कितनी आशा और निराशा कितना आनन्द और दुःख कितना सन्यास और कितना भोग है। हम इनको छूते-छूते जाते हैं, कहीं भी बाधा नहीं, ये हमारी अग्रगति के सहायक हैं पूजा के उपकरण मात्र हैं। जीवन का जो प्रवाह उत्पत्ति से निवृत्ति की ओर चलता है, उस स्रोत के दोनो किनारों पर कितना हास्य-रुदन है, कितना सुख-दुःख मनुष्य का कितना आशा-तृष्णा अगण्य विचित्र इतिहास कहीं हम प्रेम करते हैं, कहीं स्नेह और ममता के बन्धनों की सृष्टि करते हैं, कहीं प्रतारणा और पीड़न सहते हैं और कहीं दैन्य तथा अपमान। तब भी जीवन कहीं [illegible] नहीं रुकता नहीं, परिपूर्ण आत्म विकास की प्रेरणा से अपने वेग से [illegible] चला जाता है।

[illegible] आई [illegible] आई अपरूप ज्योत्स्ना। शायद [illegible] है। [illegible] यह वैशाखी पूर्णिमा है। इसी शुक्ला चतुर्दशी की [illegible] आँखों मे नींद आ गई। कहीं [illegible] आज मे ही हम [illegible] भी गतिहीन है। [illegible] मनोभावनाओं [illegible] हमारे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अपने ऊपर हम लोगो का अब कोई हाथ नही है, नियति के सम्मुख हमने आत्म-समर्पण किया है, हमारा जीवन और मरण उससे बंधा हुआ है। हम नियति की इच्छा पर खेलनेवाले कठपुतले हैं, उसकी इच्छा के इशारे से उठते-झुकते हैं, हँसते-रोते हैं और बचते-मरते हैं। हमारे सब काम-काजो के पीछे वह चुपचाप खड़ी रहती है, उसकी अंगुली का इशारा मानना होगा, हमारी स्वतंत्र-सत्ता कुछ नही है।

नींद आने से भी बचना सम्भव है. आँखों को तन्द्रा ने घेर लिया है। रास्ता चलते-चलते आजकल हमारी आँखों मे झपकी आने लगती है। कभी-कभी बहुत दूर चले जाने पर हठात् तन्द्रा भंग होती है, यही तो, चलते-चलते मानो सो गया, किन्तु इसका कुछ ध्यान ही नही। चलते-चलते अपनी नाक के खर्राटो से खुद ही विस्मित होकर परस्पर एक-दूसरे का मुँह देखते हैं! निद्रा से अचेतन होने पर कहीं किसी दिन पहाड़ से पैर न फिसल जाय, इसी आतंक से सतर्क रहता हूँ। नाल ठुकी हुई लाठी को हाथ मे सख्ती से पकड़कर, ठक-ठककर चलता हूँ। रास्ते के एक बाजू पर पहाड़ की देह है और दूसरा बाजू बिल्कुल खाली है, इसलिए पहाड़ की देह से ही घिसते हुए चलते है। इस क्षण-भंगुर जीवन के सबन्ध मे हम निरन्तर सत्रस्त रहते हैं, इसी के लिए हमारी सतर्कता है, अवश्यम्भावी मृत्यु की ओर हम क्षण-क्षण मे ताकते हैं, हम सभी प्रतिदिन प्रभात से लेकर रात्रि तक मौत का ग्रास होने से अपने को बचाने मे थक जाते हैं। लेकिन बावजूद इस कोशिश के वह दिन आयगा जब हम भाग न सकेंगे, हमको आत्म-समर्पण करना ही पड़ेगा। इतना साज-शृंगार, इतना विलास, इतना भोग और इतनी सहिष्णुता, इतना दुःख और प्रेम—सारे आयोजन मृत्यु की ही ओर हैं, सब उपकरणो के साथ एक दिन मृत्यु के चरणो पर आत्मबलि देनी ही होगी! अज्ञानी मनुष्य का स्थायित्व के प्रति तब भी इतना प्रलोभन। किसी ने बनाया है ताजमहल, किसी ने पिरामिड और किसी ने चीन की दीवार। मृत्यु को कोई चैन नहीं, वह मौके पर अपनी प्राप्य वस्तु को निर्दयतापूर्वक बिल्कुल पूरी ले लेगी। अस्सी लाख जीवो के साथ मनुष्य भी उसकी दृष्टि में समान है। मनुष्य होने की हैसियत से कोई विशेष सम्मान अथवा पक्षपात उसके लिए नहीं है, उसकी ध्वसकारक सम्मार्जिनी झाड़ू देकर सभी को एक-एक करके साफ किये देती है। आज जो नवीन हैं, जिनकी आँखो मे नया प्रकाश है, जिनमे नये उद्यम की भावना और अनुराग

है, कल वे सयाने कहलाएँगे और उनके बाल सफेद हो जाएँगे, समाज को उनकी और आवश्यकता नहीं रह जाएगी और वे मृत्यु के गर्भ में समाने के लिए दौड़ पड़ेंगे। भारी उल्लास से वे बार-बार दौड़ आते हैं और दुर्दान्त ताड़ना से बार-बार वापस चले जाते हैं। इसका नाम है जीवन।

आकाश और पृथ्वी को प्लावित कर शुक्ला चतुर्दशी का चन्द्रालोक झलमल करने लगा, पर्वतों के शिखरों पर उज्ज्वल नक्षत्र जाग रहे थे, वासन्ती हवा अपना दुपट्टा उड़ाकर भ्रमण करने लगी—मन्दिर के आँगन के एकान्त में सोने पर मेरी आँखों में नींद आ गई।

दूसरे दिन तड़के ही फिर अपना झोला-झंझट कँधे पर रखकर वही यात्रा शुरू हुई। ऊखीमठ पहुँचने के लिए इतना आयोजन और आकर्षण था, आज उसके प्रति यात्रियों की निर्दय अवहेलना है। हमारे जीवन से उसका प्रयोजन सदा के लिए समाप्त हो चुका है, वह पीछे से सकरुण दृष्टि से हमारे पथ की ओर देखता रहा। हमारे लिए बुलावा आया है प्रभात की दिशा से यह संदेश दिया है शुभ्र तारे ने, आह्वान आया है दूर-दूरान्तर से। रात्रि का अन्धकार पीछे रह गया, प्रकाश ने अपना नवीन संदेश भेजा है, हमारी यात्रा शुरू हुई। प्रातःकालीन सलज वायु बह रही है, पक्षियों का कलरव आनन्द अभिनन्दन की सूचना दे रहा है, रास्ते के आस-पास वसन्तकालीन पुष्पों का समारोह है आकाश का देवता रंगों की सुरंजित डाली सजाकर उषा की वन्दना कर रहा है, उसी के नीचे-नीचे तीर्थयात्रियों का पथ है। रास्ता केवल चढ़ाई का है, ऊपर ही की ओर उठा हुआ है, हम चल रहे हैं धीरे-धीरे। किसी के आगे जाने का उपाय नहीं, छन्दोबद्ध गति ही से हमें चलना होगा; जो दो कदम पीछे है उसको बराबर पीछे ही रहना होगा, यदि वह आगे जाने की चेष्टा करता है, तब दम बाकी न रह जाने पर उसको कभी न कभी बैठना ही पड़ेगा कोई यदि अपनी बहादुरी दिखाने लगे तो रास्ता उससे उसकी इस बहादुरी की कस-कसकर कीमत ले लेगा। शक्तिमान एवं द्रुतगामी के प्रति बाबा बद्रीनाथ का विशेष पक्षपात जरा भी नहीं, दुर्बल और बलवान को वह एक ही श्रेणी में रखकर अपने पास बुलाते हैं।

कौंथा चट्टी और गोलिया बगड़ पार होकर और एक मील चढ़ाई चढ़कर, उस दिन मध्याह्न के समय हम अधमरे होकर दोपेडा चट्टी में पहुँच गये। न मालूम ये चट्टियाँ कब खत्म होंगी, ये मानो पथ के

किनारे बैठकर यात्रियो को निगल जाती हैं और ठीक समय पर फिर अपने पेट से बाहर निकाल देती हैं। खैर, उपमा को उलट दीजिये, इन चट्टियो के समान बन्धु पथ मे और कोई नही हैं। जो पथ सनातन और बन्धनो से रहित है, जिस पथ पर मुक्ति का अनावृत अवकाश है, उस पथ पर नही चला जाता, पथिक के पैरो को उस पथ मे भयानक बाधा मालूम होती है, उसका नाम मरुभूमि है—उस परिश्रान्त पथिक को सादर बुलाती हैं डाल-पात-लता आदि से निर्मित ये चट्टियाँ। दरिद्रा दुःखी माता मानो पथ के किनारे खड़ी होकर अपने थके-माँदे बाल-बच्चो की बाट जो रही है उसके एक हाथ मे झरने का सुशीतल जल है, दूसरे हाथ मे विदुर का-सा रूखा-सूखा अन्न।

भोजन और निद्रा के बाद ठीक तीन बजे फिर रास्ते पर उतर आये। उस समय धूप बहुत तेज थी, बादलो का कही निशान भी नहीं था, करीब तीन-चार दिन पूर्व बर्फ के गर्भ मे समाधिस्थ होकर हम चले थे, उस बात को आज पसीने से तर-बतर हो जाने पर भूल ही गये हैं। इस बेला रास्ते मे शीतकाल, उस बेला चारो ओर से घुमड़-घुमड़ कर वर्षा-ऋतु। ग्रीष्म के बाद ही शायद एक बार दिखाई दिया सुन्दर वसन्त-काल, दोपहर की बेला मे सारा शरीर शायद शीत से थरथर काँप रहा था और रात्रि मे शायद अत्यधिक गर्मी से कपडे उतार कर चट्टी के दरवाजे के पास सोया पडा रहा। एक ही दिन मे कभी तो शरतकाल का-सा नीलोज्ज्वल आकाश दिखाई देता है, मल्लिका और शेफाली का समारोह नजर आता है, कभी श्रावण की तरह सकरुण वर्षा होने लगती है—कदम्ब-चम्पक की शोभा कभी ऋतुराज का वसन्त-विलास दिखाई देता है—पूर्णिमा की मधु-यामिनी अथवा कभी शीत की शीर्णता—प्रकृति का रूखा वैधव्य-वेश आँखो के सामने आता है। प्रतिदिन हमारी आँखे विचित्रतापूर्ण ऋतु-उत्सव देखती हैं। हमारा उत्पीड़ित जीवन—वैरागियो का दल—निर्मीलित दृष्टि से इस सबको देखते-देखते उदासीन होकर चला जाता है।

पिछले दिन मन्दाकिनी पार करने पर ऊखीमठ के पथ मे जो चढाई शुरू हुई थी, वही चढाई आज इस समय भी जारी है इसका अन्त नही, विराम नही। हमारा रक्त-शोषण करना और हमे शक्तिहीन बनाना ही इस पथ का उद्देश्य है। आज सुबह रईदास शुक्ल और परिहनजी को पीछे की चट्टी मे धर्मशय होकर पडे हुए देख आया हूँ। उस वृद्धा और भारी-भरकम मरहठा स्त्री को रास्ते मे बैठे आर्तनाद करते हुए

देखा है। मनसातला की मौसी कुलियों को मनमाने दाम देकर एक काण्डी में चढ़ी है। मक्खियों के काटने के घाव और देह के चुलचुलाने से पहले तो सभी दुःखी हैं, उस पर यह चढ़ाई, जीवन की आशा अब किसी को नहीं है। निर्मला चलते-चलते कभी रुक जाती है, मालूम होता है कि रोने की चेष्टा कर रही है, किन्तु रो नहीं सकती, जिह्वा के साथ तालू का स्पर्श न हो सकने से, मुख से एक अजीब तरह की आवाज़ निकालती है, मृत्यु-शैया पर लेटे हुए लोगों की मृत्यु-यन्त्रणा की तरह, चलते-चलते कोई शायद यन्त्रचालित की भाँति उसके मुँह में थोड़ा पानी डाल जाता है, वह उसको गटक जाने की चेष्टा करती है, खड़े-खड़े निरुपाय होकर देखती है। कोई भी कुछ नहीं बोलता, दाँतों के साथ जिह्वा और तालू जकड़ गये हैं कुछ भी कहने की शक्ति नहीं उनकी एक ही बात है—अभी कितना और चलना है? रास्ता कितना और चलना है, इसका पता कैसे चले? एक ही अज्ञात पथ के यात्री हम सब हैं, कैसे यह बतलाया जाय कि उस चिर-इप्सित दुर्लभ का मन्दिर और कितना दूर है! इच्छा होती है कह दूँ कि तुम और आगे न जाओ, यहीं रुक जाओ, यही तुम्हारी सीमा और शेष है किन्तु कैसे बोलूँ? रुकने की जगह तो यह नहीं है, इस सबको पार करना होगा, नहीं करने से काम नहीं चलेगा पीछे हिमालय की अनन्त पर्वत-माला के गर्भ में हम खो गये हैं, रुकने से सदा के लिए रुकना होगा, अग्रगति के सिवा और हमारी कोई गति नहीं। इस पथ में जिस तरह क्षमा नहीं, सुविधा का भी उसी प्रकार अभाव है। जो पैदल चलते हैं उनकी अवस्था जितनी भी अच्छी हो विशेष सुविधाएँ पाने का उनके पास कोई भी उपाय नहीं। यही सबसे बड़ी परीक्षा है। यहाँ छोटे-बड़े का सवाल उठने का ज़रा भी अवकाश नहीं, दरिद्र और धनी के लिए विभिन्न स्तर में चलने का कोई पथ नहीं, अहम्मन्यता, विद्वेष, मनो-मालिन्य, स्वार्थ और सर्कीर्णता—इन सबका प्रकाशित करने की कोई सुविधा भी नहीं। जातिवर्णनिर्विशेष हम सभी समान हैं। आहार-विहार, विश्राम-शयन और परिश्रम—सभी के लिए समान हैं। इस बात को नहीं कहा जा सकता कि कोई आदमी उस आदमी की अपेक्षा अच्छी तरह खाता-पीता है रहता है यदि कोई ऐसा कहता है तो वह मिथ्यावादी है।

पोथीवासा और बनिया कुण्ड छोड़कर सन्ध्या के पहले हम चोपता आ पहुँचे। सामने एक बड़ी धर्मशाला, उसी में थोड़ी-सी खुली जगह

दिखाई देने से हमने ठंडी सांस ली। समतल भूमि का बहुत ही अभाव है, जहां कहीं भी देखे वहां पहाड़-ही-पहाड़ दिखाई देने से दृष्टि प्रतिहत होकर वापस आ जाती है. कहीं भी हमारी मुक्ति नहीं, मन में केवल यह भावना उठती है कि कहीं भाग चलें, किसी उन्मुक्त समतल प्रान्तर को, कहीं दूर समुद्र के किनारे। कहां है टेढ़ा-मेढ़ा वन-पथ, गांव से जो पथ धान के खेतों को गया है, वहां से नदी के किनारे को, ग्राम-वधुएँ जिस पथ पर कलस लिये फिरती हैं, और जिस पथ पर गाता जाता है—'मनेर मानुष मनेर माझे कर अन्वेषण।' वह रास्ता कहां है? हम इस हिमालय से अब ऊब गये हैं, पत्थरों के बाद पत्थरों का ढेर नहीं चाहते, पर्वतीय नील नदी भी नहीं चाहते, नहीं चाहते उन्मादी अन्ध झरने को।

मनुष्य का जीवन जहां एकाकी होता है, जहां वह अपने पाँवों के बल पर खड़ा रहता है, जहां वह सम्पूर्ण रूप से स्वाधीन होकर अपना काम खुद ही करता है, वहां वह अतिरिक्त रूप में असहाय रहता है। सब से अलग होकर अपने दिन अपने ही बल पर काटना, वह तो व्यक्तिगत स्वाधीनता नहीं, उसका नाम है उच्छृंखल आत्मपरता। जो दुकान में रहकर खाते हैं, धर्मशाला में जाकर सोते हैं, प्रमोदागारों में जाकर भोग-विलास करते हैं, जहां चाहे वहां घूमते हैं, रोगी की हालत में अस्पताल में जाकर भर्ती होते हैं, वे स्वाधीन हो सकते हैं, किन्तु वे अभागे हैं। प्रत्येक मनुष्य के साथ पृथ्वी का कुछ लेना-देना होता है। दो बंधन तो हमको स्वीकार करने ही होंगे—स्नेह का और सेवा का। सब महापुरुषों के जीवन के इतिहास में इस स्नेह और सेवा की लीला स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य के लिए दूसरे को प्रेम करना और दूसरे से प्रेम पाना, सेवा करना और सेवा लेना जरूरी है। मनुष्य की सेवा को जिसने अस्वीकार किया, जिसने स्नेह का बंधन नहीं माना उस हतभागी ने मानव-समाज को विदा कर दिया। उसको हम बोहेमियन कहेंगे, किन्तु मनुष्य नहीं कहलावेंगे। आज यदि सभी व्यक्तिगत स्वाधीनता पाकर उन्मत्त हो उठें, यदि समाज की किसी एक व्यवस्था को प्रत्येक व्यक्ति नहीं माने तब सारा संसार मरुभूमि में परिणत हो जावेगा [illegible] ने, प्रेम और स्नेह नहीं, [illegible] [illegible] जो सज्जन [illegible] और [illegible] रहे हैं, उनके जीवन में सेवा और स्नेह का [illegible] है

वार बाईं और दाहिनी ओर फिर बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ गई। जिस समय अन्तरिक्ष सुविस्तृत हो जाता है, उस समय यह समझ लेना चाहिये कि हम बहुत ऊँचाई तक चढ़ गये हैं। चारों ओर तक दृष्टि फैलाने में जो बाधाएँ थीं, वे मानो नष्ट हो गईं। जीवन भी ऐसा ही है। जब संकीर्ण चेतना में हम वास करते हैं, तब हमारे मन के आकाश का घेरा भी छोटा होता है, उसका आयतन स्वल्प होता है; मनुष्य जिस समय उदारता और महत्व के शिखर पर खड़ा होता है उस समय वह जान सकता है कि उसके हृदय और उसकी दृष्टि का प्रसार और उसकी परिव्याप्ति कहाँ तक है। जो केवल अपने ही नोन-तेल की फिक्र में व्यस्त हैं, वे समाजबद्ध जीव हैं, जो इससे थोड़ा ऊँचा उठ गये हैं उनको देशमान्य कहा जाता है, वे राष्ट्रपति हैं। समाज और राष्ट्र की निर्दिष्ट सीमा को पार कर जो लोग और ऊपर उठ गये हैं उनको हम विश्व के कल्याणकामी महामानव महात्मा कहते हैं। काव्य और साहित्य में भी ऐसा ही है। सुविस्तृत कल्पना, अनन्त सौन्दर्यलोक। कथा को अतिक्रम करता है सुर, छन्द को अतिक्रम करती है व्यञ्जना। जिस समय कहानी लिखी जाती है उस समय कई चरित्र सामने आकर बसते हैं, उनकी इच्छाएँ स्वाधीन होती हैं, गति सहज होती है, वे स्वयं ही घटना की सृष्टि करते हैं, अपने चरित्र को इङ्गित करते हैं। किन्तु केवल चरित्र ही नहीं, केवल घटना ही नहीं—उनको साहित्य में खींच लाने का वास्तविक प्रयोजन क्या है? हमारे वास्तविक जीवन में भी तो कितने विचित्र चरित्र और घटनाओं का संस्पर्श है, किन्तु प्रत्येक का स्थान तो साहित्य में नहीं है। जो बड़े कलाकार हैं उनमें होती है यह निर्वाचन-शक्ति और होती है चरित्र और घटना के पर्यवेक्षण की विशेष भंगी। जो चरित्र की सृष्टि करते हैं वे द्रष्टा हैं, जो रस की सृष्टि करते हैं वे सृष्टा हैं। शिल्पी द्रष्टा और सृष्टा दोनों होता है। उसके स्पर्श से साधारण वस्तु असाधारण हो उठती है, वह हमें लोक से लोकान्तर को ले जाता है, सङ्कीर्णता से परिव्याप्ति की ओर और जीवन से महाजीवन को।

पाङ्गरवासा चट्टी में आ पहुँचे। धूप इस समय कम है, आकाश आज प्रातःकाल से ही मेघ-मलिन है। ऊपर और नीचे अरण्यमय पर्वत है, उसी अरण्य के गम्भीर गह्वर से झरने इधर-उधर गिर रहे हैं। पास में कहीं भी झरना हो तो हम जान जाते हैं—इस वक्त गिरगिट की पुकार बहुत तेज हो उठी है। सर्दी उतनी नहीं है, प्रभात का शीत

मध्याह्न के वसन्त में बदल गया है। अभी तक नहीं खयाल किया था, इस बार देखा कि सारे शरीर पर मक्खियों का दल टूट पड़ा है, इसी तरह जैसे कि शहद के छत्ते पर मधु-मक्खियाँ चिपटी हुई हों। फूँकने से भी मक्खियाँ हटती नहीं, हाथ से उन्हें हटाना पड़ता है। बीच-बीच में किसी-किसी चट्टी में लाखों मक्खियों का ऐसा एक गम्भीर गुञ्जन होता है कि कान लगाकर सुनने में भला मालूम होता है। कहीं मधुर स्वर सुनाई दे रहा है तो किसी मंडली में उदासीन। रात्रि के अन्धकार में, अर्द्ध-जागृत तन्द्रा में, कानों के पास जिन्होंने मच्छर का गाना सुना है, वे जानते हैं कि कैसे एक करुण अवसाद के साथ मानवात्मा सब बन्धनों को पारकर भटकता चला जाता है।

भोजन और शयन के बाद फिर बोरिया-बिस्तर कन्धे पर लेकर रास्ते पर चले आये। जूता थोड़ा फट गया है, भोजन बनाते-बनाते दोनों हाथों में आँच लगने से वे काले पड़ गये हैं, हाथ में और रोम नहीं, बर्तन मलते-मलते अँगुलियाँ रूखी और कुरूप हो गई हैं, खाने-पीने में बहुत कड़ी साधना करने से शरीर रक्तहीन हो गया है—जब बैठता हूँ तो फिर उठ नहीं सकता, जब चलता हूँ तब बैठ नहीं सकता। रास्ते में आकर यन्त्र की भाँति चल रहे हैं, रास्ता पाते ही इच्छा या अनिच्छा से दोनों पाँव अपने-आप चलते हैं। अपनी ओर देखकर हम आँखों में आँसू भरकर निश्वास छोड़ते हैं, नींद के जोर में मुख के भीतर से एक प्रकार का आर्त स्वर निकल पड़ता है, उसके शब्द से हम खुद ही चौंक पड़ते हैं, उस समय समझ में आता है कि मनुष्य की पीड़ित आत्मा कितने दुःख से मनुष्य के भीतर रोती रहती है।

ऊपर से नीचे अरण्य के भीतर उतरे चले जा रहे हैं। अभी साँझ होने में बहुत देर है, तब भी धीरे-धीरे अन्धकार हो उठा है। सुनने में आया कि इस अञ्चल में हिंसक जानवरों का उत्पात कभी-कभी बहुत प्रबल हो उठता है, साँप यहाँ पाँवों की आहट से भागता नहीं, मनुष्य को देखने पर गर्दन उठाकर ताकता है, पेड़ों की शाखाओं पर वह घूमता है, रास्ते के किनारे-किनारे चलता है। कभी इस स्थान में दावानल भड़का था, उसी के जलाने के दाग हर एक पेड़ पर लगे हुए हैं। भयभीत होकर हम सदल-बल चल रहे हैं। यदि कोई आगे जाता है तब दोनों ओर जंगल का चेहरा देखकर शंकित होकर रुक जाता है, अकारण गोलमाल से रास्ते में सरगर्मी हो जाती है—पीछे रहना कोई नहीं चाहता। कहीं-कहीं रास्ता फिसलनवाला है, काई पड़ी हुई है, कहीं-

कहीं रास्ते के ऊपर ही झरने का अविरल स्रोत बह रहा है। देखते-देखते आकाश मेघाच्छादित हो गया, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी—यहाँ वज्रपात के घोर शब्द से पत्थर फट जाते हैं, शिला-खंड स्थान-च्युत होकर नीचे लुढक आते है, वह एक भयावह विभीषिका है। देखते-देखते घना अन्धकार हो गया, सप-सपकर वृष्टि गिरने लगी। अब और कोई चारा नही, बारिश बन्द होने तक कहीं भी खडे होने को स्थान नही, इस गहन वन मे कहीं भी जरा-सी देर के लिए आश्रय नहीं लिया जा सकता। बारिश म भीगने मे कोई नुकसान नहीं, इस अरण्य के ग्रास से अपने को छुडाकर चले जाने मे हम आज बच जायँगे। भयार्त दृष्टि से बार-बार वृक्ष-लताओ के बीच की खुली जगह से आकाश की ओर देखकर चले जा रहे है, शरीर काँप रहा है, रोगटे क्षण-क्षण मे खडे हो जाते है। टेढा-मेढा रास्ता है एक व्यक्ति के मोड पर घूमते ही दूसरा व्यक्ति नहीं दिखाई देता सभी पास-पास है, किन्तु प्रत्येक ही खो गया है। अभी तक बातचीत कर रहा था किन्तु रास्ते के नजदीक ही एक जानवर का सूखा कंकाल देखकर मेरी घिग्घी बँध गई। कभी-कभी अन्धकार में पक्षियों के पखो की फडफडाहट सुनाई दे रही है, शायद अब तो वास्तव मे साँझ हो गई है। वायु और वृष्टि के वेग से हमे उस अन्धकार म प्राय दिशा-ज्ञान नहीं रह गया।

चारू की मा जो कुबडी होकर चल रही थी, हठात सीधी खडी हो गई, बुढिया ब्राह्मणी कुलियों की पीठ पर कागडी म चल रही है उसकी ओर देखकर चारू की मा भयार्त कण्ठ म बोली - तुम्हे नहीं मालूम देती मा? बूढी ब्राह्मणी धीरे से बोली—क्या री?

चारू की मा चलते-चलते इधर-उधर देखकर बोली—कैसी बुरी गन्ध आ रही है। इसी के पास ही कहीं है मा।

'दुग्गा-दुग्गा—ओ तुलसीराम चल भाई आगे।' कहकर बूढी ब्राह्मणी हठात जोर से रो उठी—पचानन को किसी भी तरह साथ नहीं ला सकी मधुसूदन, नारायण' तुलसीराम जैसे ही उस बूढी को आगे ले गया वह कंकाल-शरीर वृद्धा चारू की मा मेरे पास आकर हँसकर बोली—ठाकुर कैसा डराया है ब्राह्मणी को – मरने के नाम पर इतना भय।—यह कहते-कहते अस्सी वर्ष से भी अधिक उम्र की वह मृत्युभय-हीन बुढिया खिलखिलाकर हँस पडी। मै यदि मर जाऊँ तब चारू रह जायगी, और मै छोड ही आई हूँ सरस्वती भाद हावली, और कितनी ही गायें—तीस सेर दूध रोज होगा ही चारू का

एक पेट. वह ग्यारह वर्ष की उम्र से विधवा है चलेगा नहीं काम बाबा ठाकुर ?

'जरूर चलेगा।'

उस भयावह पथ में चारु की मा ने चलते-चलते कितनी ही बातें कीं। अपने दूध के कारोबार का इतिहास, अपने भतीजे की कहानी, सेतुबन्ध-रामेश्वर और नैपाल में पशुपतिनाथ के अपने रोमांचकर साहस-पूर्ण अनुभव इनमें से कुछ भी कानों में नहीं, घुसा, बीच-बीच में केवल 'हाँ-हाँ' कहकर उसको उत्साहित कर रहा था। मालूम होता था चारु की मा किसी विपत्ति या दु:ख से ज़रा भी नहीं डरती।

जैसे मूसलाधार पानी बरस रहा हो और उसके साथ-साथ कोई नाविक अनन्त समुद्र में रास्ता भूल जाय पर इतने ही में उसे एक द्वीप मिल जाय तो वह इस घटना से जितना उल्लसित हो उठेगा उतने ही हम दूर अन्धकार में एक चिराग देखकर हुए। तब तो आज हमने मृत्यु को टाल दिया। जंगल का रास्ता तब खत्म हो चुका था। आः, बच गये!

अन्धकार में खोजते-खोजते चट्टी मिल गई। पास में बालखिल्य नदी की क्षीण धारा नहीं दिखाई दी, केवल नदी की एक रेखा दिखाई दी। एक छोटा मन्दिर है किन्तु उसके दर्शन करने की ओर शक्ति नहीं रही। धर्मशाला में स्थान का अभाव था, हमने डाल-पत्तों से बनी हुई चट्टी ही में आश्रय लिया। इसका नाम नरछल्न चट्टी है। अनेक इसको जंगल चट्टी भी कहते हैं। आज की यात्रा यहीं शेष हुई। गोपालदा ने बड़े समारोह के साथ गांजे की चिलम तैयार की।

थोड़ी रात्रि हो चुकी थी जब कि हम सोने की तैयारी कर रहे थे, उस समय दो हिन्दी भाषा-भाषी स्त्रियाँ तथा एक पुरुष रोते-रोते आकर चट्टी के किनारे खड़े हो गये। कितनी सिसकियाँ, कितनी आह-कराह-उपाह-कराह! वे बोले—महाराज जी, तुम्हारे गोड़ छूते हैं, एक लालटेन उधार दो, एक आदमी हमारा जंगल में रह गया, देखो बाबा, देखो।

इस अंधकारमय रात्रि में यहाँ किस जंगल में उनका आदमी रह गया? वह क्या अभी जीवित है? मालूम हुआ कि वह स्त्री है? [illegible] आगे-आगे पीछे रह गई है, इतनी देर प्रतीक्षा करने पर भी वह नहीं पहुँच पाई। हाथ में चिराग लेकर उनको इस दुर्गम और भयानक पथ में खोजने जाना होगा, किन्तु लालटेन [illegible] नहीं है। दियासलाई भी नहीं, उनका लालटेन उनके हाथ में है लिए वे [illegible]

की तरह उसी रात मे फिर उसी रास्ते पर चलने लगे यह निश्चय हुआ कि लालसांगा पहुँचने पर वे लालटेन लौटा देंगे।

वे तो गये किन्तु साथ मे ले गये मेरी इस नीरव रात्रि की नींद को भी। मेरा व्याकुल मन और सजग दृष्टि दोनों उन लोगो के साथ-साथ उसी निरुद्दिष्ट का सन्धान करते हुए इधर-उधर फिरने लगे। शायद, कौन जानता है, अपने आदमी को वे कभी ढूँढ लें, किन्तु मैं खोजने पर न पा सकूँगा, मेरी तन्द्राहीन कल्पना मे वह मनुष्य चिर-निरुद्देश्य है और चिरकाल से मार्ग मे भटकता आ रहा है वह कभी नहीं लौटेगा।

सब सो गये किन्तु मुझको चिन्ता ने कठोर आक्रान्त किया। शरीर मे कम्बल चुभ रहा है सारे शरीर मे यन्त्रणा है रगें जलती हैं सारी रात नहीं सो और सोने की चेष्टा करके रात भर नींद न आ सकी।

कल की बात भूल गया हूँ। दिन-रात बीते जाते हैं, स्मृति शिथिल होती जाती है पिछली रात की दुर्घटना वह स्वप्न थी वह माया थी आज का यह दृश्य ही सत्य है यह नील आकाश यह निर्मल प्रकाश बसन्त के दिनों का यह अलौकिक ऐश्वर्य-सम्भार। गत दिन की प्रकृति का आकस्मिक प्रलयान्धकार तूफान और वज्रपात ये अतीतकाल के हैं किसी जन्म की घटनाएँ हैं। हमारे सब अंगों पर उनका दाग है किन्तु मन मे उनका जरा भी दाग नहीं। हम लोगो की स्मरण-शक्ति का तल बहुत ही क्षीण हो गया है, इस वेला का इतिहास उस वेला मे उपन्यास हो जाता है। जब हम खुद अपनी आपबीती को दूसरों के मुँह से सुनते हैं तो अवाक् रह जाते हैं। फिर चल पड़े हैं। सुबह से ही चढ़ाई शुरू हो गई है दोबाल पार कर यात्री-गण कीड़ो की तरह उठ रहे हैं। कीड़ो की तरह अक्लान्त कीड़ो की तरह निर्वाक।

सटाना चट्टी धीरे-धीरे पार की। और नहीं चला जा सकता। शरीर अतिरिक्त यन्त्रणा से थरथर काँप रहा है। आँखों से आग-सी बरस रही है, और हाथ की लाठी मजबूती से नहीं पकड़ी जा रही है। झोला और कम्बल कन्धे पर प्रबल शत्रु की तरह दबा कर रखे हैं इनका भार और इनका पीडन अब नहीं सहा जा सकता। इस तरह से करीब डेढ़ मील रास्ता और तै कर चुके। धूप अत्यन्त तेज हो उठी है, इतनी तेज कि शरीर जला जा रहा है। पास ही मे गोपेश्वर मिला, सामने गोपेश्वर का प्रकांड प्रस्तरमय मन्दिर। अति नगण्य एक शहर का अनु-

करण, दो-एक दूकाने, पास ही मे एक छोटा-सा गाव । गांव के बाल-बच्चे पाई-पैसा मांगने यात्रियो के पास दौडे आये । शिव मन्दिर के सामने एक विराट त्रिशूल खड़ा है, उसी पर बारहवीं सदी के महाराजा अनेकमल्ल की विजय-वार्ता एक दुर्बोध्य भाषा मे खुदी हुई है। यात्री यहाँ वैतरणी कुण्ड मे स्नान करते हैं। वे करते रहे, मै तो एक दुकान के पास एक बडे पत्थर के सहारे बैठ गया। माथा घूम रहा है, तबियत ठीक नहीं है। हठात छाती के भीतर से एक ऐंठन होते ही उसी रास्ते के पास कै कर डाली। भगवान, यह क्या हुआ ? दम लेने से पहले ही और एक बार कै। लोग पास से चले जा रहे हैं, मुख फिराकर वे मेरी ओर क्यो देखें, ऐसा तो बराबर होता ही रहता है।

कोई एक आदमी जो वहाँ से गुजर रहा था, कह गया एक बाडी कर लो यार—जय बदरीविशाललाल की !

नही, नही, समय नही, सभी आगे चले गये। अरे शान्त, अरे भ्रान्त, अरे भग्न, और एक बार उठ खड़ा हो, कंधे पर रख ले झोला कम्बल, लाठी और लोटा उठाकर चल अपनी पहली शक्ति को फिर वापस ले आ, विदीर्ण कण्ठ से जोर से पुकार उठ—

'व्याघात आशूक नव नव,
आघात खेये अचल र'व,
वक्षे आमार दु:खे बाजे
तोमार जयडंक,
देबो सकल शक्ति, ल'व
अभय तव शंख *

जल्दी-जल्दी भाग चला। मृत्यु मानो पीछे से मुझे मार-मारकर आगे को धकेल रही है। दिन का उज्ज्वल प्रकाश मिट गया है, केवल नील अन्धकार है, आकाश हिल रहा है, बिलकुल भीतर धंसी हुई आधी मुंदी आंखो से गरम आंसू गिर रहे है। मै क्या पागल हो गया हूँ ? मै क्या नशे मे उन्मत्त हूँ ? इस प्रकार पाँव क्यो काँप रहे हैं ? सारा

---

* आवें, दुख आवें नित नव-नव,
उन्हें सहूँगा अविचल, नीरव,
दुख में मेरे उर-स्पन्दन में
बजता है जयडंक तुम्हारा,
मैं अपनी सब शक्ति लगाकर
मान करूँगा अभय-शंख तव !

आवाज कानो मे आ रही है। देखते-देखते सिर के पास अपराह्न की धूप पडने लगी। वसन्त की सरसराती हवा बही जा रही है। सामने लाल और सफेद पत्थरो के दो पहाड़ सूर्य की किरणों मे एक आश्चर्य-जनक रूप धारण किये हुए है। नदी के उस पार जिस पथ से हम आये हैं वह पथ-रेखा स्वप्नलोक की तरह दिखाई दे रही है। धीरे-धीरे मेरी रुग्ण और गतिहीन दृष्टि फिर बन्द हो गई। सारे शरीर को ज्वर की असह्य यंत्रणा और ज्वाला ने घेर लिया, और अब मेरी कोई आशा नही। मन ही मन में सभी से होश-हवाश मे विदा ले ली। जन्मभूमि की ओर देखकर उसका अभिवादन किया।

कितनी देर तक पडा रहा, इसका पता नही लेकिन एक बार उठकर पागल की तरह भाग चला और धर्मशाला के पीछे के मार्ग में उतर आया। उस समय अपराह्न की वेला ढलकर सध्या की ओर जा रही थी, अधिक वक्त नही था। बालू और पत्थरो से भरे कठिन मार्ग से चलकर सीधे नदी के किनारे पहुँच गया। दो-चार साधू-सन्यासियों की मंडलियाँ इधर-उधर बैठी थी। अपनी भलाई-बुराई का जरा भी खयाल न कर गहरे जल मे उतर आया, धारा बहुत तेज थी, कुछ दूर जल के बीच मे जाकर एक बडे पत्थर को बाँहो मे भरकर डुबकी लगाई।

करीब आध घण्टे तक बेपरवाही से स्नान कर जब धर्मशाला में आया तब शरीर थोड़ा स्वस्थ हो गया था। विष से ही विष दूर हुआ। और कही न देखकर झोला-झफट और लाठी लेकर अकेला रास्ते पर चला आया। उस समय साँझ हो चली थी। होने दो, इस समय थोडा रास्ता पार किया जा सकता है। मै उस दिन बेचैन होने के कारण अति साहसिक बन बैठा था।

किस तरह कई चट्टियाँ पार हो गईं, आज उनकी स्पष्ट याद नहीं है। रात मे एक जगह आश्रय लिया। दूसरे दिन पीपलकुठी पार की। रास्ते के पास तर सब्ज फूलो के कई छोटे [illegible] गये। लाल फूलों के समारोह के ऊपर नवीन सूर्य की किरण-घटा फैल रही है। यहाँ बाघ व भालू की खालें खूब सस्ते दामों में बेची जाती हैं। पीपलकुठी में गढवाली लड़कियाँ कम्बल का व्यापार करने आती हैं। [illegible] में आकर गरुडगंगा की चट्टी में पहुँचा। यहाँ गरुड़गंगा और अलकनन्दा का संगम है। गरुड़ का मन्दिर और साधारण शहर मिले। यह बात प्रचलित है कि लौटने के समय गरुड़गंगा में एक डुबकी लगाकर पत्थर का एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़ कर कोई घर ले जाकर उसकी पूजा करे

उतराई का है : पाँवों की व्यथा जाग उठी। तीन मील रास्ता तय कर नदी के पुल को पार कर जिस समय श्रीविष्णुप्रयाग पहुँचा उस समय साँझ हो गई थी। यहाँ विष्णुगंगा अथवा अलकानन्दा तथा धवलीगंगा का संगम है। प्राचीन काल में यहाँ विष्णु की आराधना कर नारदमुनि ने सर्वज्ञ होने का वर प्राप्त किया था। नीलवसना अलकानन्दा की गोद में गैरिकवसना गंगा का आत्मसमर्पण इस स्थान में एक रोमांचकर तथा नयनाभिराम दृश्य उपस्थित कर देता है। यहाँ से बद्रीनाथ केवल सोलह-सत्रह मील रह जाता है।

धवली गंगा के किनारे-किनारे रास्ता बहुत संकडा तथा खतरनाक है; थोड़ा मैदान तथा थोडा चढाई का। खड़े दीवाल की तरह चढाई नहीं है, साधारण है। कहीं सारा रास्ता टूट कर नदी के मध्य में विलुप्त हो गया है। कहीं पत्थर पड़े हुए हैं, उनको पार करना एक दुस्साध्य कार्य है। कहीं रास्ता ही नहीं, झरने के जल के ऊपर से ही चलना पड़ता है। कहीं स्तूपाकार बालू और पत्थरों के टुकडे हैं, अत्यन्त सावधानी से पाँव रखकर आगे चलना पडता है। कल से संगमरमर पत्थर के पहाड़ दिखाई दे रहे हैं, कोई हंस के पंखों की तरह सफेद है, कोई गुलाबी हैं, और किन्हीं में नीले रंग और हल्दी के से रंग का समावेश है। दोनों ओर सफेद पत्थर, बीच में कल-कल करती गंगा बह रही है। थोड़ी-थोड़ी चढाईवाले पथ पर केवल मैं ऊपर की ओर उठता चला जा रहा हूँ, निश्चय ही आज की चढाई से छाती में दर्द नहीं होता किन्तु थकावट उत्पन्न हो जाती है—पाँव काँप रहे हैं। बुखार नहीं है, किन्तु शरीर स्वस्थ नहीं हुआ है। अधपेट खाने तथा उपवास करने से शरीर बेंत की भाँति हिल रहा है। घाटचट्टी पार कर दो मील चढाई चढने के बाद बहुत देर से थके-माँदे शरीर को लेकर पाडुकेश्वर गाँव में आ पहुँचा।

गाँव बुरा नहीं है, नदी के ऊपर ही है। ग्राम का ऊँचा-नीचा रास्ता शाखा-पत्तियों तथा पेड-पौधों के तनों से तैयार की गई कई चट्टियाँ छोटी एक धर्मशाला, पास ही योगबदरी का मन्दिर। एक औषधालय दिखाई दिया, वहाँ झाड-फूँक, मंतर-जंतर आदि का कारबार था। सामने पर्वत शिखर पर पांडुराजा वास करते थे, मन्दिर में ताम्र शासन-पत्र मौजूद है। स्थानीय लोगों ने यह समझाने की कोशिश की कि इसी रास्ते से एक दिन पंच पांडव तथा द्रौपदी ने स्वर्गारोहण किया था, इसके प्रमाण-स्वरूप उन्होंने कितने ही चिन्ह तक दिखाये। हम स्वर्गद्वार तक जायेंगे या नहीं इस संबंध में अनेकों ने प्रश्न किये। शीत

प्रधान देश है, इसी लिए यहां के साधारण निवासी सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट हैं। आज के रास्ते के आस-पास भोज-पत्र के बहुत पेड हैं, बीच-बीच में किसी-किसी चट्टी की छत तो मोटे-मोटे भोज-पत्रों से तैयार की गई है। कहीं-कहीं जवाफूलों की तरह पहाड हैं, कोई पहाड़ उज्ज्वल काले रंग का है, कोई नीले आकाश की तरह और कोई पहाड़ दूध की तरह सफेद रंग का है—निर्वाक तथा चकित होकर देखते-देखते हम लोग चले जाते हैं। खाने-पीने के बाद फिर चलना शुरू किया है। पानी से भरे बादल बीच-बीच में सूर्य-लोक को ढककर आकाश में तैरते हुए-से चले जा रहे हैं और हम नदी के किनारे चल रहे हैं। गंगा की धारा अब नीले रंग की नहीं है, कोमल मटमैले रंग की है। नदी इस समय हमारे दक्षिण की ओर है। पथ के निर्देश पर अनेकों बार एक ही नदी के इस पार उस पार जाना होता है। जितनी दूर भी दृष्टि जाती है केवल ऋजु-कुटिल अनन्त कंकड-पत्थरों से भरी हुई गंगा गर्जन-तर्जन करती भागती दिखाई देती है। पथ से उतर कर पत्थरों का ढेर पार कर नदी के जल को छूना असाध्य कार्य है, यह असंभव है। फिर नदी की समतल भूमि को छोड़कर ऊपर की ओर रास्ता गया है, थोडी-थोड़ी घृणोत्पादक चढाई है, घुटनों में दर्द होने लगता है। कभी-कभी बद्रीनाथ से लौटते हुए दो-चार प्रसन्नमुख यात्री दिखाई दे रहे हैं। सभी के मुख पर खुशी है, आनन्द है और बदरीनाथ का कीर्तन है। कंगलों की तरह उनकी ओर देखकर फिर आगे चलता हूं।

लामबगड चट्टी पार हुई। रास्ता आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर को उठा है, सिर्फ उठता जा रहा है। इस बार नदी भी उठ आई है, उसका प्रवाह मुखर है, भीम गर्जन करती हुई नीचे को दौड रही है। पत्थरों के साथ नदी का खेल देखने पर फिर आँखें नहीं फिराई जा सकतीं। कितनी ही बार जाते-जाते रुक जाते हैं, आँखें भरकर देखते-देखते मन में उस छवि को अंकित कर लेते हैं फिर एक निश्वास छोडकर आगे बढते हैं। नदी की अविश्रान्त गति की ओर देखकर मनुष्य का मन क्यों बोझिल हो उठता है, यह तो नहीं बतला सकता, किन्तु जल की प्रखर धारा धमनियों के रक्त को जिस तरह हिला देती है वह मैं जानता हूँ। एक जगह आकर रुकना पडा, इस तरह का ढालू और रपटदार रास्ता है कि बैठे-बैठे नीचे उतरने के सिवा और कोई चारा नहीं। बैठे ही बैठे नीचे की ओर लाठी टेककर नदी के किनारे उतर आये। इस

गये है। आकाश मे बादल छाये है, बारिश हो रही है, चारो दिशाओ मे अँधेरा छा गया है। कल सुबह चलकर बद्रीनाथ पहुँचेगे, यात्रा खत्म होगी। पास ही मे हनुमाजी का प्राचीन मन्दिर है, किन्तु भीतर घुस कर दर्शन करने की सामर्थ्य नहीं है। बाएँ हाथ की ओर एक पक्के धर्मशाला की दूसरी मंजिल मे चला आया। उस समय भीतर-बाहर बहुत यात्री वहाँ पर जमा थे।

'ओहो, यह बाबा ठाकुर! आ गये?'

फिर कर देखना है तो चारू की मा। मैंने कहा—हाँ आ गया। सब अच्छे तो है? गोपालदा कहाँ हैं?

भीतर से शीतार्त कण्ठ से सानन्द उत्तर मिला—भाई आओ, तम्बाकू पी रहा हूँ. सारे रास्ते मे तुम्हारी याद करते-करते सौभाग्य से इस वक्त हम लोग यहाँ से चले नही गये!

और सभी बोले—तुम बाबा सन्यासी नही हो. संन्यासी होने तो मनुष्य के ऊपर इतना आकर्षण नही होता!

'तथास्तु' कहकर गोपालदा के पास जाकर कम्बल बिछाया। उस समय भयकर सर्दी से हाथ-पाँव ठिठुर रहे थे। चारो ओर से शीत-जर्जर सध्या धरती पर उतर रही थी।

* * *

यात्रा करो, यात्रा करो, यात्रीदल,
मिला है आदेश,
अब नहीं समय विश्राम का।

पौ फटने के समय के तरल अन्धकार मे काँपते-काँपते सभी रास्ते मे उतर आये। चारो दिशाओ मे बादलो के ऊपर बादल छाये रहने से घोर अन्धकार से घिरे हुए हैं, बारिश की बूंदे चाबुक की तरह सपासप शरीर पर चोट कर रही है। बाईं ओर नदी की एक धारा के मोड पर अर्द्धचन्द्राकार रास्ता उत्तर दिशा को चला गया है। हिम-कणयुक्त तीक्ष्ण हवा से दिल का रक्त तक ठंडा हो जाता है, दाँत भी किटकिटाने लगे हैं। फिर केदारनाथ की तरह वैसा ही भयावह प्राकृतिक दुर्योग। वन-बालिकाओ की तरह लता-पुष्पालंकार-शोभित झरने यात्रियो का सादर स्वागत करने के लिए रास्ते के ऊपर ही उतर आये है। कहीं सब जगह नहीं दिखाई देते, यहाँ तक उनका कोई ठिकाना नहीं, यह तो बर्फ का तूफान है—हरी-हरी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नेताओ की तरह [illegible] होकर [illegible] के [illegible] के [illegible]

है, इस समय धमनियों में है शेष रक्त-बिन्दु, आँखें अभी तक बिलकुल अंधी नहीं हो पाई है, यही पक्षाघातग्रस्त हाथ, ये पीड़ा-जर्जर पाँव यह शुष्क नीरस देह, यह भग्न अवसन्न हृदय—ये मेरे हैं, यह मैं ही हूँ!

दुर्जय की जयमाला
भर दे मेरे फूलों की डाली

जय बदरी विशाल की जय!

१२ जेठ १३३९

आज का दिन महाकाल की जय माला में शामिल नहीं है, आज का यह हिमकणमय कुहरा भरा प्रभात हमारे जीवन से अलग है, मृत्यु का अंधकार ठेलते-ठेलते हम एक नवीन लोक में आ गये हैं। पहले मन में यही खयाल हुआ हम समझते थे कि बचेंगे नहीं। एक निर्दय प्रलोभन अमर्त्य मरीचिका।

दूर से बद्रीनाथ का छोटा गाँव जब प्रथम बार दृष्टिगोचर हुआ तब इसी बात को विचार कर निर्वाक हो गया। आनन्द व उल्लास प्रगट करने के लिए शारीरिक व मानसिक सगति नहीं। कैसे प्रगट किया जाय? हम इस प्रकार निर्बल हो गये हैं और हमारी शक्ति इस प्रकार शेष हो चुकी है जैसे तेल के खत्म हो जाने पर दीपक की दशा हो जाती है दीर्घ पचीस दिन का जो दुःखमय इतिहास हमारे पीछे पड़ा है, उसको तो हम भूल ही गये हैं आज हमारी यात्रा का शेष है, दुःख-दहन की निवृत्ति है। जिस पद-चिन्हमय पथ ने एक दिन गाँव की सीमा को पार किया था, जो नदी और जगलों के पार गया था, देश-महादेश जिसने लाँघे थे, आज वही पथ विश्व की ओर प्रसारित हुआ है, हमारी उस दिन की सामान्य तीर्थ-यात्रा आज विराट के चरणों को छू रही है। मन ने पूछा, तुम यही हो? तुम्हारा यही रूप है?—जिसके लिए आया वह तो मन्दिर में नहीं मेरा वह तो सारे पथ में है। सामान्य मन्दिर में तो तुम बन्दी नहीं हो।

गंगा का पुल पार कर गाँव में प्रवेश किया। गाँव का नाम भी बद्रिकाश्रम है। कोई बदरी-विशाल तथा कोई नारायणाश्रम भी कहते हैं। पहले बाएँ हाथ की ओर एक छोटा डाकघर मिलता है। उसके बाद ही रास्ते के दोनों ओर छोटी-छोटी दुकानें नजर आती हैं। आकाश में बादल छाये हैं, बारिश हो रही है हवा के जोर तथा असह्य

ठंढ के कारण कहीं भी इधर-उधर नहीं देखा जा सकता। जल्दी-जल्दी अपने नियत डेरे में चला आया।

डेरे की शान-शौकत कम नहीं है, अच्छे पक्के पत्थरों का दो मंजिला मकान है दरवाजा, खिडकियाँ, ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ, सामने पत्थरों से पटा हुआ बडा आँगन। यह हमारे पण्डे का घर है। जिस पण्डे के यहाँ हमने आश्रय लिया है वह यहाँ काफी समृद्धिशाली हैं। ये पाच भाई हैं। सूर्यप्रसाद, रामप्रसाद आदि। पुत्र का नाम प्यारेलाल है। देवप्रयाग में भी इनके प्रतिनिधि के तत्वावधान में हम रहे। पहिले ही इनके आतिथ्य-सत्कार ने हममें इनके प्रति कृतज्ञता की भावना भर दी। मं.धि के घर में इन्होंने कई कम्बल लाकर हमारे लिए बिछा दिये, लकडी लाकर आग सुलगाई। इसी आग तथा कम्बल ने उस दुर्योग में हमें जीवन-दान दिया। सूर्यप्रसाद और रामप्रसाद की तरह इतने भद्र और मिष्टभाषी पण्डे तीर्थों में बहुत ही कम देखने में आते हैं। प्रत्येक बंगाली तथा अन्य प्रान्तों के यात्री लोग इनके डेरे में चले आये।

दुर्योग और ठण्ड के कारण अकर्मण्य होकर सारे दिन घर के भीतर बैठकर बहुत बेचैनी से वक्त गुजारने लगा। मक्खियाँ तो नहीं हैं, किन्तु कपडे-लत्ते और कम्बल में कीडों का भयानक उत्पात है। आहारादि तथैवच। चूल्हे-चौके के लिए जगह भी नहीं है और सुविधा भी नहीं है। इनके अतिरिक्त शक्ति भी नहीं है—अतएव अमरसिंह के मार्फत पूरी मँगवाई। धन्य पूरियाँ! पूरी ही सब जगह अगति की गति है।

कैसे अपरान्ह कटा — किस पथ से आई सन्ध्या! बाहर टप-टप करके इस समय बारिश हो रही थी, हवा से बार-बार दरवाजे व खिडकियाँ कांप उठते हैं, बन्द घर के भीतर आग के चारों ओर बैठकर हम कई लोग बातचीत कर रहे हैं, गोपालदा धीरे-धीरे तम्बाकू पी रहे हैं। मेरी सामग्री सारे स रोग अपने ऊपर चिपटा कर एक जगह कुण्डली-सी बनकर निर्जीव पडी है पर इन्हीं सुविधाओं के साथ पहाड़ देहातों की माँ ने जिनके दुर्गम शक्ति है, अपने घर से पनमेहनों बातों की वार्ता शुरू कर दी है। धीरे-धीरे रात्रि की निद्रा शान्त हो गई।

दूसरे दिन सुबह उठकर आकाश की ओर देखकर मन मेरा बहुत विस्मय हुआ। बर्फानी पथ में चारों दिशाएँ हँस रही हैं। आकाश स्वच्छ नील है। महाप्रस्थान के पर्वतों के शिखरों पर सूर्य...

जाति-वर्ण के विचार से रहित यात्रियों की भीड़ भीतर कोलाहल कर रही है। आज सभी अपने परम लक्ष्य के पास आ पहुँचे हैं, मुखों पर तृप्ति की रेखा फूट पड़ी है। किसी का शरीर रोगी है, कोई क्षत-विक्षत है, कोई लँगड़ाते चल रहा है, किसी का गला बैठ गया है—और ये सब बातें होती रहें, अपने-अपने ललाटों पर उन्होंने जय का टीका तो लगाया है। मन्दिर के भीतर अन्धकार है, नाना अलंकार और आभरणों से आवृत बद्रीनाथ का स्पष्ट दर्शन करना एक भारी कठिन कार्य है। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु की मूर्ति और आस-पास में छोटे-छोटे देवी-देवता हैं। मूर्ति छोटी है। सामने अन्धकार में घी का दीया जल रहा है, पास ही में अन्नभोग कतारों में सजाया हुआ है। श्रीक्षेत्र की तरह यहाँ भी अन्न के बारे में छूत-अछूत का कोई विचार नहीं।

इतने दिनों का पथश्रम आज इस सामान्य में ही समाप्त हो गया। दुःख, पीड़ा, कातरता, उपवास और पथश्रम, इतना कौतूहल, व्यथा-वेदना और आयोजन सब आकर रुक गये एक प्रस्तर मूर्ति के चरणों पर! कितनी मृत्यु-महामारी, कितना क्लेश और उत्पीड़न, कितने रास्तों की कितनी घटनाएँ और संघात—आज क्या उनका कोई मूल्य नहीं?

कौन कहता है मूल्य नहीं! कितने युग-युगान्तर तथा कितने काल-कालान्तर व्यापी लोक-प्रवाह अविश्रान्त रूप से इस विराट के तीर बहता आया है, प्यास से आर्त कोटि-कोटि हृदय मुक्ति-वासना में विगलित अश्रुओं से टूट पड़े हैं इसके चरणों के पास—आज मेरी तरह नगण्य मनुष्य के शिथिल सन्देह और अविश्वास से क्या उसका मूल्य कम हो जायगा? इतना बड़ा अहंकार तो मुझमें नहीं!

चारों ओर एक बार देखा, मेरी समस्त नस-नाड़ियों के भीतर एक अजीब आन्दोलन जाग उठा है। क्या इसी का नाम नास्तिक की आत्म-ग्लानि है? क्या इसी को अविश्वासवादियों की अवचेतन प्रतिक्रिया कहा जाय? किन्तु, मेरा स्वाभाविक अहंकार नष्ट हो जाय, मिट जाय व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का मेरा निष्फल दम्भ—मैं इन्हीं में से एक जन हूँ इनकी ही भाँति भक्ति-रस की बाढ़ में मैं भी बहता चला जाना चाहता हूँ। उन सबकी सम्मिलित प्रार्थना के भीतर अपने कंठ को मिलाकर मेरी भी यह कहने की इच्छा हुई, हे देवाधिदेव, मेरा सन्देह और अविश्वास दूर करो, जो कुछ झाड़-झंखाड़ है उसे दूर कर दो। हे पारस-मणि जितना मालिन्य जितनी कुरूपता, जितनी विरूपता, जितना

कुछ आवरण है—तुम्हारे मार्ग में मेरा मन मुक्त हो जाये! सुदूर प्राचीन-काल से जो तुम्हारी दर्शन-कामना लिये इस दुर्गम-पथ पर आये, उन्हीं के बाद कितनों ने चले आये हैं, महाकाल के प्रखर प्रवाह की गोद में जो दल के दल अन्तर्हित हो गये हैं, हे देव युग-युगान्तर से कोटि-कोटि अगण्य नर-नारियों की मोक्षलाभ की यही प्रगाढ़ कामना इस कातुर हृदय में जागृत किये हुए है—तुम उनको मुक्ति दो! अविश्वास नहीं, सन्देह नहीं, मोह नहीं—मैं उसी सनातन काल का हिन्दू हूँ, उसी चिरन्तन हिन्दूकुल में मेरा जन्म हुआ है, मेरी धमनियों के रक्त में पवित्रता की वही पुरानी भावना है—तुम्हारे चरणों के नीचे मैं पद-दलित होना चाहता हूँ, धन्य होना चाहता हूँ, कृतार्थ होना चाहता हूँ!

बोझिल मन से फिर पथ के पार जाकर डेरे के किनारे बैठ गया। नील आकाश में सूर्य चमक रहा है, चारों ओर फेन के समान शुभ्र हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों पर सूर्य किरणें प्रतिबिम्बित होकर अद्भुत सौन्दर्य विकीर्ण कर रही हैं, महायोगी की लम्बी जटाओं की तरह बरफ की धाराएँ झरनों के रूप में नीचे उतर आई हैं। [illegible] समय-समय पर मन्दिर में कांसे का बड़ा घंटा बज उठता है। उस पार पहाड़ के नीचे एक सरकारी बंगला है उसी के पास खेती की कोमल हरी भूमि है। तीन-चार महीनों के भीतर ही जो-कुछ फसल तैयार हो सकती है, की जाती है—उसी के बाद शरद काल में फिर यह राज्य धीरे-धीरे बर्फ के गर्भ में समाधिस्थ हो जाता है गाँववालों को नीचे चला जाना पड़ता है। बद्रीनाथ का मन्दिर अदृश्य हो जाता है पुजारी रावल महाशय जाकर जोशीमठ में वास करते हैं जाड़ों में वे उसी स्थान से बद्रीनाथ को पूजा अर्पण करते हैं।

'दादा ?'—मेरे कान के पास एक करुण कण्ठ काँप उठा।

मुख फिराकर देखा। वह कठ-स्वर मैं आज भी नहीं भूल पाया।

'आप आ गये हैं! अच्छे तो हैं ?'

ब्रह्मचारी को सहसा पहचान न पाया। पहिचानने की बात भी नहीं थी। रूखा, दुबला-पतला शरीर, जाड़े से सूखा तथा फटा मुख दोनों पाँव वीभत्स रूप में गलित-क्षत, हाथ-पाँवों में भयानक सूजन! हाँ कहकर निःश्वास लेते-लेते वह पास आकर बैठ गया। बोला—कई दिन ज्वर से पीड़ित रहा। फिर यह पाँव कितनी यन्त्रणा है, जो दिन कट जायँ! उसकी आँखों में आँसू आ गये।

'पाँवों में यह सब कैसे हुआ ?'

'मक्खियो के काटने का घाव . दादा, आपके प्रति मैने सौ अपराध किये हैं. आपको छोडने से ही मुझे यह दड मिला है. मुझे क्षमा कीजिये !'

उसके दाऐ पाँव मे चाल तथा कौडी बँधे हुए थे. उस ओर देखकर मैं बोला -क्षमा करने जैसी बात तो कुछ है नही। तुम मुझको एक दिन छोडकर चले आये उस बात को भूल गया हूं।

मेरी यह बात झूठी नहीं है। जिस ब्रह्मचारी के प्रति उस दिन ममता और स्नेह में अन्धा हो गया था, जिसको छोड़ जाने मे छाती फटी जाती थी. आज उसके बारे मे मुझे कुछ ख़याल ही नहीं, मेरे मन का मन्दिर धुन-पुंछकर साफ हो गया है। ब्रह्मचारी के सबध में आज मेरा हृदय बिलकुल उदासीन है।

'सोचता हूँ, इस पाँव से अब फिर हिमालय कैसे पार किया जाय . ऐसा जान पडता है कि अब नही बचूँगा !'

मैने कहा—मरेंगे तो सभी एक दिन ब्रह्मचारी !

ब्रह्मचारी कुछ देर चुप रहा, उसके बाद बोला—आपके ऊपर ही आशा लगाये मै यहाँ चार दिन से हूँ, रोज दो-एक बार आपको खोजने निकल जाता था कि आप आये हैं या नही। यह जानता हूँ कि मेरी सब आवश्यकताओ की आप पूर्ति कर देगे।

वह फिर बोला—उपवास करते-करते आया हूँ, उपवास करते-करते ही जाऊँगा. किन्तु रामनगर से वृन्दावन तक रेल का किराया न होने से काम कैसे चलेगा मै केवल आपके ही भरोसे पर हूँ ..

मुख उठाकर देखते ही वह फिर बोला—यदि कुछ भिक्षा दें।

एक दिन खुद अपने आग्रह से ब्रह्मचारी का खर्चा उठाया था, किन्तु वह हृदय आज मुझमे नही रहा। उसकी करुण प्रार्थना के प्रति हठात निर्दय होकर बोल उठा—साथ मे मै जमींदारी तो बाँध नही लाया हूँ !

देखते-देखते उसका मुख अपमान, भय और निस्सहायावस्था से सफेद हो गया। उसका दुर्बल और रोगी शरीर इस आघात को नही सह सका, वह एक पत्थर के सहारे पीठ रख कर बैठ गया।

मैने कहा—मै दान करने के लिए नहीं आया हूँ, पुण्य करने के लिए भी नहीं. भिक्षा मेरे पास से न मिल सकेगी।

'थोड़ा बहुत . आठ आना पैसा ही . ?'

कठोर कठ से मैंने उत्तर दिया—नहीं।

ब्रह्मचारी और कुछ नहीं बोला, केवल चुपचाप अपने दो अकर्मण्य पाँव सावधानी से ठीक कर झुककर उसने नमस्कार किया, उसके बाद बहुत कष्ट से उठकर धीरे-धीरे वह चल दिया। ब्रह्मचारी की कहानी का यही परिशिष्ट है।

जीवन का और एक पहलू है। जिससे आघात मिलता है, जो अवहेलना और अनादर करता है, उस पर विजय प्राप्त कर उसको करतलगत करने के लिए मन छूट पडता है, और जहाँ मुझे ही कोई पूरा आत्म-समर्पण कर रहा हो, मेरा ही सहारा लेकर जो बचना चाहता है उसके प्रति मेरी निर्दय अवहेलना, निष्ठुर उदासीनता जीवन का दूसरा पहलू है। जीवन की गति सीधी नही है। ईश्वर को उदासीन बतलाकर उसको पाने के लिए हमारी इतनी उत्कंठा और इतनी व्याकुलता है। देवता बातो ही बातो मे हमारे करतलगत होने से उनका मूल्य कम होता जाता है, हमारी कामना और हमारा कौतूहल भी थमते जाते हैं।

प्रेम दोनो ओर से होता है। एक ओर किसी को अवलम्ब करने से हृदय रंग और रस से सिक्त हो जाता है, प्रेम को केन्द्रित कर मनुष्य का आत्मविकास होता है, दूसरी ओर हम दौड़ पड़ते हैं उसकी ओर जिसको नही प्राप्त करते, जिसको प्राप्त किया ही नही जा सकता। अनेक मनुष्यों के बीच मे हम चिर-ईप्सित मन के अनुरूप मनुष्य को खोजते-खोजते चले आते हैं, अनेक जीवनो के घाट-घाट मे उसको अन्धो की तरह टटोलते-टटोलते जाते है, निष्फल होकर घूमते-फिरते हैं।

ग्राम की अपेक्षा बद्रीनाथ को क्षुद्र शहर कहा जाय तो कोई हानि नही। केवल वही पत्थरो से पटा हुआ करीब दो सौ गज लम्बा रास्ता है, किन्तु उसी के ऊपर दोनो ओर दुकानो की पक्तियाँ हैं। कपडे-लत्ते, मिरच-मसाला, दाल-चावल, खिलौने-आभूषण, पूरी-कचौरी—अनेक दुकानें हैं। जब एक जगह पुस्तको व तस्वीर की दुकान देखी तो बड़ा आश्चर्य हुआ। कैसा भाग्य नाटक—उपन्यास नही—धर्मग्रन्थ! इससे भी अधिक ताज्जुब तो तब हुआ जब चाय व पान की दो दुकानें देखी। प्रसन्न होकर चाय पी।

जाडे की हवा के कारण शरीर को कम्बल मे लपेट कर अनाथ बालकों की तरह इधर-उधर फिर रहा था, उस समय सन्ध्या होने में कुछ देर थी। रास्ते के दक्षिण ओर शिलाजीत तथा चँवरो की कई दुकानें देखते-देखते चला जा रहा था। ये दोनो वस्तुएँ दुष्प्राप्य हैं।

शिलाजीत तो पहाड़ों की चट्टानों पर धूप में पिघलता है। किसी-किसी खास पहाड़ के एक अलक्ष्य शिखर पर कोलतार की तरह यह वस्तु मधु के समान एक जगह में प्रकृति की इच्छानुसार जमा होती है। कभी एक बार इस चीज़ को जीभ से चख कर मनुष्य ने सोचा कि खाने में तो यह बुरी नहीं है। चखते-चखते उसने पेट में डाल लिया। मालूम हुआ कि शरीर के लिए यह स्वदेशी सैनेटोजन की तरह पुष्टि-कारक तथा बल-वर्द्धक है। इस तरह उसने तमाम पहाड़ों को छान डाला, हिमालय की धूप का शोषण कर इस ले आया और तोले के हिसाब से इसे बेचने लगा। एक तोला अच्छी शिलाजीत का दाम आठ आना होता है। इसके बाद चँवर। हिमालय के बर्फीले प्रदेश में सुरा गाय पाई जाती है। कोई इसको चँवर गाय भी कहते हैं। कठोर बर्फ में वह घूमती-फिरती है। बर्फ की तरह सफेद देह होती है। उसके बाल भी सुन्दर होते हैं। बस फिर क्या था, उसी गाय की पूँछ के बालों को काट कर लाने लगे। हिन्दू-सन्तान गाय को काटने लगी, उसके बालों के गुच्छों को एक मूँठ से बांधकर, गृह-पालित पशुपति के ऊपर पखा झलने लगी।

एक बड़ी दुकान में जाकर चँवर तथा शिलाजीत की परीक्षा कर रहा था। गोपालदा पास ही में थे, इन दोनों वस्तुओं के प्रति उनका भारी मोह है। मोल-तोल करने के लिए उन्होंने मुझ ही को आगे ठेल दिया, मैंने एकाएक अन्धे की तरह अनर्गल उर्दू मिश्रित हिन्दी बोलना शुरू कर दिया। दुकान में काफी भीड़ थी, स्त्री-पुरुषों की भीड़ से दुकानदार हकचका-सा गया। उसका वस्तुओं को उलटा-पलटा कर अपने मन के अनुरूप एक छोटे चेवर को खोज रहा था।

हाथ बढ़ाकर एक चेवर पकड़ते ही दूसरी ओर से एक और हाथ आकर उसके ऊपर पड गया। जो हिन्दुस्तानी लड़की अब तक जोर-जोर से बोलती हुई सब दुकानों को अपनी बातचीत, हँसी, तर्क तथा मोल-तोल से मुखरित कर रही थी, यह हाथ उसी का था। स्त्रियों को मैं अधिक सुविधा देने के लिए राजी नहीं, इसलिए चेवर को हाथ में ले लिया।

'ओइटी किन्तु आमार पछन्द, दिन आमाके।'*

चकित होकर चेवर उसके आगे रख दिया। भीड़ में से किसी ने झुककर बोला—आप बंगाली हैं?

* [illegible]

वह भद्र महिला हँस कर बोली—क्या देख कर सन्देह होता है? हिन्दी सुन कर?—क्यो, नानी कहाँ गई? हमारे चौधरी महाशय? ओ भगवान, ऐसा मालूम होता है कि वे वहाँ से दुकान समेत सारा सामान उठा ले जायँगे। यह चँवर आपको कैसा लगता है?

मैने उत्तर दिया—चीज़ अच्छी है, छोटा-सा है, दाम भी कम है, केवल दस आने है।

उन्होने कहा—यदि मन के अनुकूल हो तो दाम ज्यादा भी दिये जा सकते हैं। ठीक, इसी को मैंने लिया, किन्तु मन को नही भाया। मेरे घर में हैं नारायण, उन्ही के लिए..यह कहकर उन्होने फिर दुकानदार के साथ शिलाजीत के सम्बन्ध मे बातचीत छेड़ दी।

अपनी हिन्दी भाषा को मैंने संयत किया, इनके साथ नही चल सकूँगा, शायद कुछ कहना चाहता हूँ और कुछ और ही कह जाऊँ—ज़रूरत नही।

'आप यहाँ क्या करने आये हैं?' उन्होने सिर से पैर तक एक बार मेरी ओर देखा।

'तीर्थ के लिए आया हूँ—जिसके लिए सभी आये हैं!'

'तीर्थ के लिए!'—होठ उलट कर वे एक ऐसी अवज्ञापूर्ण हँसी हँसी कि मै अत्यन्त कुण्ठित हो गया, ज़रा-सी देर मे ही मेरी छब्बीस दिन की यह सारी तीर्थ-यात्रा मानो मिथ्या हो गई। बोलीं—मालूम होता है कि तीर्थ करने के लिए आपकी यही उम्र है? ओ भगवान, वेश-भूषा भी आधे-सन्यासियो की-सी है।

उनकी बातचीत तिरस्कार की तरह सुनाई दी। गोपालदा के पास सटकर बैठ गया। उनकी चमकती आँखो के सामने मैं ज़रा देर मे ही सकुचित हो जाता हूँ। देखते-देखते नानी और चौधरी महाशय आकर खडे हो गये। सहज ही मे परिचय हो गया। माल-असबाब खरीदने सभी उठ पडे। साथ मे सूर्यप्रसाद पण्डा था। स्वर्गद्वार के सम्बन्ध मे बातचीत छिडी। स्वर्गद्वार जाने के लिए बरफ के भीतर दो दिन चलना पडता है—मनुष्य के लिए यह पथ अगम्य है। स्वर्गद्वार के रास्ते से जाने पर 'शतपथ' मिलता है—इसी पथ के प्रथम प्रान्त में पाण्डव पत्नी देवी द्रौपदी भूतलशायिनी हुई थीं—महापुरुष तथा प्रकृत सन्यासियों को छोड कर साधारण मनुष्य वहाँ जाने मे असमर्थ है। यहाँ से छः मील रास्ता बरफ के भीतर चलने से वसुधारा का दृश्य दिखाई देता है। वसुधारा हिम का एक प्रपात है। बरफ के उच्च शिखर

से वायु-प्रताडित एक जलधारा असंख्य बिन्दुओ में चारो ओर छिटक पडती है, अनेक निम्नगामी फुहारों की तरह—उसी का नाम वसुधारा है। रास्ते मे खडे-खड़े बातचीत हो रही थी, इस समय ज्ञानानन्द स्वामी जिनके साथ पहले हरिद्वार मे मुलाकात हुई थी, सदलबल आ गये ; हमारी बातचीत में उन्होने भी हिस्सा लिया। यहाँ से लौटने के वक्त जोशीमठ से होकर कैलाश जाने की इच्छा मेरे मन मे थी, अतएव कैलाश की चर्चा छिड़ी। सारी बातचीत में, सारे तर्क और सारी आलोचना मे तथा सारी समस्याओ के ऊपर जो अनर्गल रूप से अपने मतामत को प्रगट करती जा रही थी वह थी नानी की नातिन। उसकी रुचि परिमार्जित थी, उसकी बातचीत मे उसकी बुद्धि का आभास मिलता था, उसके व्यवहार मे कोई सकोच न था और सहज ही मे सबको लाँघकर उसका व्यक्ति-स्वातन्त्र्य हम सभी के ऊपर प्रतिष्ठित हो गया। चौधरी महाशय ने कहा कि वे औसतन प्रतिदिन दोनो वेलाओ मे दस मील स अधिक न चलेंगे थोड़ा-थोड़ा चलना ही अच्छा है। उनको यहाँ आज तीन दिन हुए हैं, कल सुबह देश की ओर रवाना हो जायेंगे।

मैंने कहा—हम तो रोज बारह-चौदह मील तक चलते हैं।

नातिन बोली—तब तो हमें रास्ते मे जरूर पकड लोगे—चलो नानी तुम्हारे लिए कुछ लेकर डेरे में लौट चले, चौधरी महाशय जाड़े में कष्ट पा रहे हैं। हमारे चौधरी महाशय कैसे मनुष्य हैं, जानते हैं ?—शान्त, शिष्ट, सीधे-सादे, क्रोधहीन। पूजा-अर्चना कर चलते हैं, इनके शिष्य-सेवक हैं—और क्या कहूँ चौधरी महाशय ?

चौधरी महाशय स्नेह की हँसी हँस कर बोले—अब अपनी नानी की बात भी कह दो ? मेरी गैरहाजिरी मे

सभी हँस पडे। मैंने कहा—चाहे जो कुछ कहिये, एक बात देखकर तो ईर्ष्या होती है, वह है आपके साफ-सुथरे चमकते कपडे-लत्ते।

नातिनी एकाएक सबकी ओर देखकर बोली—हम वैरागी होकर तो यहाँ आये नही हैं, साज-सरजाम लेकर आये हैं।

यह बात क्या थी, चाबुक की एक चोट थी। ठीक ही तो है, पाँवों मे उनके मोजे हैं, सफेद जूते हैं, शरीर पर पशम की एक बैंजनी चादर ओढ़े हुए है, ऐश्वर्य मे ही वह पली हैं। उनकी बातचीत से बहुत आसानी से ही यह बात मालूम हो जाती थी कि वह एक संभ्रान्त परिवार की हैं।

गोपालदा को लेकर चलने ही को था कि नातिन ने पास से एक

गोपालदा चुपचाप बोले—मालूम होता है वही वाचाल लड़कीवाला दल है? उस लड़की को चैन नहीं, बैठे-बैठे पाँव नचाती है, . खून की तेजी ऐसी ही होती है।

कुछ देर चुप रहकर बोला—कल चला जाता हूँ गोपालदा।

गोपालदा हाथ पकड़ कर बोले—इस अस्वस्थ शरीर को लेकर? तीन रातें यही बितानी पड़ती हैं भाई!

मन में मानो एक रुद्ध रोष और अभिमान जाग उठा। मैंने कहा—इस समय कैलाश की ओर ही जाऊँगा, आप स्वदेश लौटकर घर से समाचार भेज दीजिये, पता दे जाऊँगा।

'ठहरो, एक चिलम तम्बाकू भरता हूँ।' कहकर गोपालदा उठ बैठे।

रात में जो तूफान उठा था, दूसरे दिन सूर्य के प्रकाश में देखा तो सब शान्त हो गया है। आकाश में और कोई मलिनता नहीं है, चारों दिशाएँ स्वच्छ नील-आभा में चमक रही हैं। यात्रियों को आज अपने-अपने घरों का ध्यान आने लगा है, परिवार तथा आत्मीयजनों की कुशल का खयाल आने लगा है। घोर नींद से आज सभी जाग उठे हैं। अब संचय करने की बारी है। कोई ले रहा है तीर्थ का सुफल, कोई ठाकुर का प्रसाद और कोई तस्वीर तथा पुस्तक। कइयों ने रास्ते से कच्चे सिद्धि के पौदों को तोड़कर उन्हें धूप में सुखाने रख दिया है। जिनको अधिक धैर्य नहीं है, वे चिट्ठी लिखने बैठ गये हैं। यहाँ के डाकघर की मुहर लगवा कर वे चिट्ठियाँ अपने-अपने घरों को भेजेंगे। आज कोई जल्दी नहीं, सभी विश्राम ले रहे हैं, इधर-उधर की बातचीत हो रही है, कोई दवा-दारू संग्रह कर रहा है, कोई काँडी खोज रहा है—पैदल लौट चलने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। बीच-बीच में सूर्यप्रसाद और रामप्रसाद अपने मधुर आलाप-व्यवहार से यात्रियों को खुश कर जाते हैं। इस प्रकार के सहृदय तथा भद्र पंडे भारतवर्ष के किसी भी तीर्थ में बहुत कम मिलते हैं।

यात्रा संपूर्ण।

पुनरागमन

पथेर साथी, नमि बारम्बार।
पथिक जनेर लह नमस्कार।
ओगो विदाय, ओगो क्षति, ओगो दिन शेषेर पति,
भांगा बासार (गृहहीन) लह नमस्कार
ओगो नव-प्रभात ज्योति
ओगो चिर दिनेर गति,
नूतन आशार लह नमस्कार!
जीवन रथेर हे सारथी, आमि नित्य पथेर पथी
पथेर चलार लह नमस्कार!

तीन दिन ठहर कर पन्द्रहवीं जेठ की सुबह हम आखिरी विदा और अभिवादन प्रगट कर तथा अखंड पुण्य संचय कर परितृप्त मन से रवाना हो गये। जादू की तरह नष्ट स्वास्थ्य और लुप्त शक्ति फिर लौट आये। नवीन उत्साह, नई प्रेरणा, सतेज प्राणधारा—इस तरह से स्वस्थ और फुर्तीला पहले कभी अपने को महसूस नहीं किया था। सारे अस्वास्थ्य और क्लेद-कालिमा को बद्रीनाथ रख आया। शरीर में बल, हृदय में उल्लास, पाँवों में दौड़ने की तेजी, खून में गरमी और एक अपरिमेय प्राणशक्ति लेकर सबके साथ चल रहा हूँ। हमारा नया जन्म हुआ है। सुबह अपना सामान कन्धे पर रखकर, लाठी को हिलाता-हिलाता प्रायः भागते-भागते चला। दो घण्टे में हनुमान चट्टी आ पहुँचे और दोपहर को पांडुकेश्वर पहुँच गये। साँझ के बाद जाकर पहुँचे विष्णुप्रयाग और जोशीमठ पार कर तुरन्त सिंहद्वार ही मिला। रात को सोते समय हिसाब लगाकर मालूम हुआ कि आज हम लोग उन्नीस मील चले हैं। इस समय हमारे पाँवों में असीम शक्ति है।

रास्ता हमारा पहिचाना हुआ है, कहाँ क्या है, यह हमें ज्ञात है। हमें लालसांगा वापस जाना होगा, वहाँ से नवीन रास्ते से कर्णप्रयाग की ओर जावेंगे। सभी को इस समय जल्दी है। तीर्थ पूरा हो गया है, पहाड़ी देश असहनीय हो उठा है, अन्दाज है कि करीब दस-ग्यारह दिन चलकर ट्रेन में बैठ जावेंगे—मैदान देखने के लिए सभी बहुत उत्सुक हैं। अब हम प्रत्येक दिन यह समझ सकते हैं कि कहाँ दोपहर का भोजन करेंगे और रात्रि में कहाँ ठहरेंगे। दूसरे दिन हमने गरुडगंगा

में रात काटी। सिंहद्वार से गरुड़गंगा सोलह मील है। दूसरे दिन दोपहर को चावला चट्टी पहुँचे। भोजनोपरान्त फिर रवाना होकर शाम को लालसांगा पहुँच गये। तीन दिन चलकर इस बार हम थक गये। चलते-चलते फिर कान सुन्न पड़ गये हैं। मन उदासीन हो उठा है, याददाश्त कम हो गई है। कुछ भी हो, खोज-खबर कर निर्मला ने अपना वही हरीकेन लालटेन वापस ले लिया। साँझ होने में उस समय कुछ देर थी, लालसांगा में खड़े न रहकर हमने फिर चलना प्रारम्भ किया। इस बार नवीन रास्ता पाया है, हरिद्वार से यह रास्ता कर्णप्रयाग होकर आया है। नवीन पथ में दो मील चलकर उस दिन हम कुबेर चट्टी में पहुँचे और रात्रि में वहाँ विश्राम किया। तीन दिन में हम पचास मील चले।

सुबह फिर यात्रा। रास्ते में कहीं-कहीं आराम करते जाते हैं, गोपालदा तम्बाकू का कश लगा लेते हैं, अफीम निगली जाती है, फिर चलना शुरू करते हैं। दो-एक जनों को छोड़कर सभी बूढ़ियाँ कांडी में चल रही हैं, पक्तिबद्ध होकर कांडीवाले चल रहे हैं। सुबह हम श्री नन्दप्रयाग पार होकर चले। यहाँ नन्दा और अलकानन्दा का संगम दिखाई दिया। यह आख्यायिका प्रचलित है कि पूर्वकाल में राजा नन्द ने यहाँ यज्ञ किया था। यह एक छोटा शहर है। यहाँ से गरुड़ जाने का नया रास्ता शुरू हुआ है। नन्दप्रयाग में महेशानन्द शर्मा की दुकान से हिमालय के कई फोटो संग्रह किये। शुद्ध शिलाजीत के लिए यही दुकान प्रसिद्ध है। सर्दी कम हो गई है, धूप तेज हो गई है। एक पहाड़ के बाद दूसरे पहाड़ उतर रहे हैं। अभी बहुत रास्ता बाकी है, दोपहर में सोनला चट्टी पहुँच गये और साँझ को जयकडी चले गये। बीच में लगासू चट्टी रह गई।

दूसरे दिन करीब नौ बजे के समय कर्णप्रयाग के किनारे पहुँच गये। सामने पत्थरों के टुकड़ों से भरी हुई बड़ी विस्तृत नदी है, पिंडर गंगा और अलकानन्दा का संगम है। यह बात प्रचलित है कि नदी के किनारे पर्वत के समीप एक बार कुन्ती-पुत्र कर्ण ने अपने पिता सूर्यदेव का दर्शन पाकर अभेद्य कवच आदि को वर रूप में प्राप्त किया था। नदी के उस पार दक्षिण का पथ गया है रुद्रप्रयाग की ओर, बाईं ओर का रास्ता सीधा गया है मेहलचौरी को। आज हम इसी स्थान से अलकानन्दा से विदा लेंगे। यात्री यहाँ नदी के संगम पर पितरों का श्राद्ध करते हैं।

नदी का पुल पार करने पर सामने एक बड़ी चढ़ाई मिली। लौटते समय चढ़ाई का रास्ता बहुत ही अखरता है। कोई उपाय नहीं, हाँफने-हाँफने शहर में चले आये।। शहर काफी बड़ा है। बड़े-बड़े पहाड़ी रास्ते हैं, सरकारी बंगले हैं, अस्पताल है, दुकान-बाजार हैं—एकान्त में एक मान्य-गण्य डाकघर है, पुलिस का थाना है। जल-वायु चमत्कारपूर्ण है। अनेक ढूँढ़-खोज के बाद एक धर्मशाला की दूसरी मंजिल में चले आये। शुद्ध गरम दूध और सुस्वादु जलेबी कर्णप्रयाग की दो उपादेय वस्तु हैं।

ठीक तरह से खाया-पिया। यहाँ बिछुड़ने का वक्त आया। हमारे सुख-दुःख का साथी, दुर्योग और दुर्दिन का अन्तरङ्ग बन्धु, पथ-निर्देशक, अमरसिंह यहाँ हमसे विदा लेगा। आज यह जान पड़ा कि वह हमारा आत्मीय नहीं, वह पराया है, उसको चला जाना होगा।

देवप्रयाग की ओर किसी एक दुर्गम पर्वत के शिखर पर उसका एक छोटा गाँव है। घर में उसके पिता-माता, भाई-बहिन तथा नव-विवाहिता पत्नी हैं—यात्रियों को मेहलचौरी के रास्ते पर छोड़ कर उसे चला ही जाना होगा। मनुष्य के परिचय-व्यवहार से घनिष्ट आत्मीयता हो जाती है। दुःख के दिन तथा दुर्योग की रातें उसके साथ हमने काटी हैं, वह बन्धु है, वह परम आत्मीयजन है, उससे बिछुड़ने में हृदय में बहुत दुःख होता है, मन के भीतर से मानो किसी ने जोर से जड़-मूल से उखाड़ कर दूर फेंक दिया हो। अमरसिंह ने यात्रियों के हृदय पर विजय प्राप्त की है—वह विजयी है, भाग्यवान है।

जिससे जो कुछ बन पड़ा—कपड़ा, चादर, कोट, तौलिया, कम्बल और रुपए—उदार हाथों से सब-कुछ उसकी झोली में भर दिया। बद्रीनाथ ने जिस चीज को नहीं पाया, उसको पाया अमरसिंह ने। देवता पाते हैं पूजा, मनुष्य पाता है प्रेम। अमरसिंह हमारा बड़ा आत्मीय-जन है, बहुत ही अधिक आत्मीय।

इस बार मेरे ऊपर यह भार आया कि मैं यात्रियों की देख-भाल कर उन्हें ले जाऊँ। साथ में चल रहा है ज्ञानानन्द का दल। अमरसिंह से पथ के सम्बन्ध में नाना उपदेश ग्रहण कर तीन बजे हमने फिर यात्रा शुरू की। यह बात तय हुई कि मैं सबके पीछे-पीछे चलूंगा। उस समय रास्ते में धूप काफी तेज थी।

इस बार गाड नदी के किनारे-किनारे रास्ता थोड़ा समतल है, नदी तक उतर कर इस बार सहज ही में प्यास बुझाई जा सकती है।

[illegible] पीछे-पीछे। नदी के उस पार [illegible] दिखाई देते हैं। नदी के [illegible] इस समय [illegible] चमक रहा है। समतल रास्ता होने से चलने की सुविधा हो गई है। गोपालदा को आज आगे चलना होगा, आगे जाकर यदि अभी पड़ाव इन्तज़ाम नहीं किया जाय तो रात में बड़ी दिक्कत होती है। असम्भव नहीं है, इसलिए चार में [illegible] ही साथ देखना-भालना होगा।

चलने से पहले गोपालदा तम्बाकू पीने के लिए बैठे; पास से ज्ञानानन्द के दल की लड़कियाँ धीरे-धीरे चली जा रही थीं। सभी दलों में औरतों की संख्या अधिक है।

'सारा रास्ता तय कर चुके लेकिन ऐसी चोटी मटक-मटक, ऐसे नाज़-नख़रे कहीं नहीं देखे।'

'बड़े आदमी की लड़की है, उसका ढंग ही निराला है।'

'यदि नहीं चल सकती थी तो [illegible] क्या [illegible] कर लेती? गृहस्थ की लड़की होकर 'खट-खट' करती घोड़े पर सवारी कर रही है, कोई लोकलज्जा ही नहीं? जब सेंदुर ही मिट कर राखों मे आ गया तब प्राणों का इतना मोह क्यों?'

'पाँचू की मा ठीक कह रही है, ऐसी जवान लड़की का इस तरह घूमना?'

बूढ़ियाँ तरह-तरह की बातें करती हुई चली जा रही थी।

मैंने कहा—ये किसके ऊपर इस तरह टूट पड़ी है?

गोपालदा ने कहा—तुमसे कहना भूल गया भाई, मेरा ख़याल है कि उसी लड़की के बारे में यह सब बातचीत हो रही है, वही जो वहाँ बाबा के?

उनकी ओर कुछ देर तक मैं देखता रहा, उसके बाद बोला किसके बारे में कह रहे हैं?

'समझे नहीं क्या, वही जो चश्मा पहिने हुए नानी और उनकी विधवा नातिन?'

'वे तो चले गये हैं?'

'नहीं, आज कर्णप्रयाग में मुझे वे मिले। लड़की एक घोड़े पर चल रही है, उसके शरीर में दर्द जो है। उनका दल आ रहा है पीछे। अच्छा, मैं यहाँ से आगे चलता हूँ।' यह कहकर गोपालदा अपनी मोटी लाठी लेकर ठिगने और मोटे भालू की तरह आगे चले गये। तम्बाकू पीकर वे रास्ते में तेज़ चल सकते हैं।

गाना करनेवाली थी। मैंने कहा, मैं भी जाऊँगी। जाने देने के लिए कोई राजी ही नहीं हुआ। मैंने कहा, मैं तो जाऊँगी ही! [illegible] देश-विदेश के नाम पर मेरा मन भाग जाता है, मैं आराम अब कर रही हूँ।

मैंने कहा—इस तरह की किसी और नई जगह कहाँ गयी हैं?

उन्होंने कहा—यह ठीक है कि मैं बंगाली की लड़की हूँ, किन्तु बंगाल में रहती नहीं। बंगाल के साथ केवल जन्म-सूत्र का सम्बन्ध है। अनेक दिनों तक पढ़ा। मैं रही हूँ। आजकल सारे वर्ष यू० पी० के शहरों में मैं उन्हें केवल खुली हुई-सी घूमती रहती हूँ। कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

लाल धूप पहाड़ों के माथे पर चली गई है, दिन ढलने को है। किसी किसी पहाड़ के गर्भ में अभी से अन्धकार हो चला है। नदी के एक ओर सफेद सरसब्ज फूलों का जंगल है और एक ओर काँटों का जंगल। नदी की ओर देखते हुए बीच-बीच में बातचीत हो रही है।

'लेकिन यह मुझे बुरा लग रहा है, मैं तो घोड़े पर जाऊँ और आप पैदल चलें—छु छु, क्यों रे, जल नहीं पीयेगा? मेरे शरीर का भार कम तो है नहीं, क्षण-क्षण में बेचारे का गला सूख जाता है' घोड़े की गर्दन को उन्होंने एक बार हाथ से थपथपाया।

रास्ते के ऊपर एक झरना उतर आया है, घोड़े ने गला झुकाकर उसके ऊपर मुँह डाला। घोड़ा नितान्त निरीह एवं निस्तेज है रोगी और दुबला-पतला है। ये घोड़े साधारणतः पहाड़ों में बोझ लेकर इधर-उधर आते-जाते हैं। माल भी ढोते हैं और मनुष्यों को भी ले जाते हैं।

सेमली चट्टी के बाद सिरोली चट्टी के पास आ गये हैं। बातचीत करते हुए करीब पाँच मील रास्ता पार हो चुका है! उन्होंने एक बार पीछे मुड़कर अपनी मंडली के रास्ते की ओर देखा।

'मेरे घोड़े का नाम क्या है, जानते हैं?—विन्दू! इसके लड़के को लेकर इसी कारण से तो शरत चटर्जी ने गल्प नहीं लिखी! और देखिये, एक दूसरी समस्या है! मेरे साईस का नाम सभ्य-समाज में अचल है। नाम क्या है, जानते हैं?—प्रेमवल्लभ। काटकर दो कर दो फिर भी नहीं सुनेगा बहरा है।'

हम दोनों की हँसी से पथ गूँज उठा। मोड़ को पार करते ही चट्टी मिली। सिरोली चट्टी फलों के बाग में वृक्षों की घनी छाया में है। घोड़े

से उतरकर वह रास्ते के उस पार की चट्टी मे चली गई और मैं आया इस पार गोपालदा के आश्रम मे।

रात मे नानी के साथ परिचय हुआ। औरतें सुविधा पाते ही सहज ही मे पारिवारिक चर्चा छेड़ देती हैं। उनका घर काशी मे है। परिवार-परिजन के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की बातचीत होने लगी। उन्होने नातिन का जो पितृ-परिचय दिया उससे मैं सहज ही मे उन्हे पहचान गया। नातिन का नाम रानी है।

'मा-बाप नही हैं, स्वामी की अकाल-मृत्यु हो गई, लड़का सरकारी नौकरी करता था। इस समय प्राय. यात्रा के घर मे ही रहती है। छोटी उम्र मे यह हालत हो गई...कैसा भाग्य! जो कुछ माहवारी पाती है . ।'

परिचयादि के बाद उठकर चला आया। चौधरी महाशय आदि के रात्रि-आहार के लिए भी व्यवस्था करने का भार मेरे ऊपर आया। थोड़ी देर बाद जब करीब तीन पाव पूरी लेकर उनकी चट्टी के पास जाकर खड़ा हुआ तो देखा कि नातिन और नानी जप मे बैठी हुई हैं। खडा ही रहा। बहुत देर बाद उनका जप पूरा हुआ। मैंने कहा—दाम इसी समय चुका दीजिये, तीन पाव पूरियो के साढ़े सात आने होते हैं।

रानी ने एक रुपया निकाला, खिरीच तो मेरे साथ थी ही, बाकी पैसे लौटा दिये। पैसो को उलटते-पलटते उन्होने हँसकर कहा—यह छोटी दवन्नी, यह क्या चलेगी?

मैने कहा—चलाने से तो अचल भी चलता है।—यह कहकर वापस चला आया।

वसन्त के शेष काल मे नदी का रूप गेरुआवस्त्र-धारी तथा तप शीर्ण वैरागिनी का-सा दिखाई देता है, उसके बालूमय किनारे-किनारे पिंगल-जटाधारी रुद्र संन्यासी आते-जाते हैं, उसके बाद एक दिन उसी नदी के सर्वाङ्ग मे वर्षा उतर आती है, ज्वार का वेग उठ पडता है, उसके दोनो किनारे प्राणो के ऐश्वर्य से आन्दोलित हो उठते हैं। जीवन भी ऐसा ही है।

सुबह की धूप में चारो दिशाएँ आलोकित हो रही हैं। आज का रास्ता फिर पर्वतो के गह्वर में चला गया है। धीरे-धीरे भटोल्नी चट्टी पार हुई है। यह तय हुआ था कि रास्ते मे हम मिलेंगे। मैं दो मील आगे चलूंगा, उसके बाद वह अपनी मंडली को छोड़कर, पीछे से घोड़े को हाँककर तुरन्त मिल जायँगी। अर्थात्, इस बात का अनुमान हम दोनो ने लगा लिया है, यही ठीक है कि हमारी बातचीत और कोई न सुने।

सभी बातें तो सबके लिए नहीं होती हैं। भटोली चट्टी पार कर बहुत दूर आ पड़ा। गोपालदा थोड़ा बैठकर तम्बाकू पीकर चले गये हैं। महलचौरी तक रास्ता खत्म करने की सभी को जल्दी रहती है। पहले पथ पार करना एक कठिन साधना थी, इस बार वह साधना भी नहीं है, दृढ़ इच्छा-शक्ति भी नहीं है, आजकल पथ के प्रति सभी की घृणा है। किन्तु उनमें एक मनुष्य है जो पथ को अब पीडादायक नहीं समझता, उसके पाँवों में चलने का अथक नशा आ गया है तथा अनन्त उत्साह। उसने एक सहज और सबल गति पा ली है। वह कह रहा है—

पथेर आनन्दवेगे अवाधे पाथेय कर क्षय।

घोडे के खुरों की आवाज को सुनकर पीछे फिरकर देखा तो दूर से अश्वारोहिणी आ रही है। पीछे नदी और पर्वतों की पट-भूमिका में वह ऐतिहासिक युग की दुर्गावती अथवा लक्ष्मीबाई की तरह दिखाई दे रही है। घोडे की पीठ पर बैठने की उनकी भाव-भंगी भी तेजस्विनी है। एक स्वच्छ सफेद चादर ओढे हुए हैं छोटा-सा घूँघट निकाले है, शरीर पर वही गाढी बैंजनी रंग की चादर है। पास ही प्रेमवल्लभ बीड़ी पीता-पीता आ रहा है।

पास से आकर बोली—भाग्य बड़ा कि आप कैलाश नहीं गये।

मैंने कहा—कितना अच्छा भाग्य, आप बद्रीनाथ आईं।

बोली—कल रात खाया था?

हा विधाता, यह क्या घोडे पर सवार लडकी के योग्य प्रश्न है? मैंने हँसकर कहा—यह तो बिलकुल अन्तरंग की बात है।

वह हँसती हुई चुपचाप बोली—नानी वगैरह आ रहे हैं, आप तेज कदम बढ़ाकर और थोड़ा आगे चले जाइये।

मैंने कहा—नहीं, नानी के सामने ही मैं आपसे बातें करूँगा।

'आप क्या स्वराज्य पा गये हैं, कहती हूँ आगे चले जाइये।'—सस्नेह उन्होंने धमकी दी।

अतएव आगे ही चला। जाते-जाते आदिबद्री पहुँच गया। सामने ही आँगन के ऊपर नारायण का एक पुराना मन्दिर है, मन्दिर में अनेक दरारें आ गई हैं—उसी के पीछे नजदीक में एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण गाँव है। पास ही साफ पानी का एक झरना है। लोगों की धारणा है कि यह जल स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। ठंडे-ठंडे में आज काफी रास्ता तय हो चुका है। इस बार और भी चला जा सकता है। यदि बिलकुल थक न गये तो किसी चट्टी में इस वेला नहीं

टिकेंगे। देखता हूँ कि आदिबद्री के देव-दर्शन के लिए सब लोग आकर एक स्थान पर इकट्ठा हुए हैं। मालूम हुआ कि सामने की दुकान में कुछ जल-पान कर फिर सब चलना शुरू करेंगे। अतएव फिर आगे चला।

आगे तो जरूर चला, किन्तु आज प्रातःकाल से ही इस नदी, आकाश, पर्वत और दूर के गाँवों से इंगित पाकर भीतर से महाकवि की कविता की कई पंक्तियाँ स्वतः उठने लगीं—

दाओ आमादेर अभय मंत्र, अशोक मंत्र तव,
दाओ आमादेर अमृत मंत्र, दाओगो जीवन नव,
जे जीवन छिल तव तपोवने
जे जीवन छिल तव राजासने,
मुक्त दीप्त से महाजीवने चित्त भरिया लव
मृत्यु-तरण शंका-हरण दाओ से मंत्र तव।

पिछले तीस दिनों के साथ आजकल के दिन मेल नहीं खाते, फिर नवीन प्रकाश और नये अध्यवसाय में आ पहुँचे हैं। जीवन की गति ऐसी ही है। फिर उसने एक नया जोश प्राप्त किया है। आज समझ रहा हूँ कि चित्त-धर्म की कोई निर्दिष्ट नीति नहीं है, चित्तलोक की कामनाओं की कोई नियत पद्धति नहीं है, अपने आनन्द का पथ चित्त स्वयं चुन लेता है, संस्कारों की बाधा से वह अपने स्रोत को रुद्ध कर देने के लिए राजी नहीं। आज वह अपने मुक्त पंखों को फैलाकर अनन्त आकाश में उड़ रहा है।

'क्या सोच रहे हैं?'

मुँह फेरकर बोला, 'नहीं तो, आइये। सोच रहा हूँ कि आपके चादर का रंग बैंगनी न होकर हरा होता तो कैसा होता?'

'क्या कहा?'

'कह रहा हूँ कि आपका चोगा चलता है किन्तु दौड़ता नहीं।'

'नहीं दौड़ने से ही कुशल है। दौड़ता तो मेरी जवानी उसके हाथ से छिनी नहीं होती।'

'किस तरह?' मैंने कहा।

उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं [illegible] चट रही है किन्तु [illegible] जिससे [illegible] [illegible] है, मैं तो [illegible]।'

कहीं असहनीय हो जाती है। लतावितान के छिद्रों से वासन्ती वायु रह-रहकर अपने उच्छ्वास से मर्मरित हो उठती है।

चढ़ाई पार करना बहुत कठिन है, घोड़ा थक गया है। साईस पीछे ही था, इस बार उसने सामने आकर लगाम पकड़ ली और घोड़े को खींचते-खींचते ऊपर उठने लगा। रास्ता बहुत कठोर है और टूटा-फूटा है।

'इतनी देर हो गई, नहाया-खाया नहीं, आपको निश्चय ही चलने में कष्ट हो रहा है।'

मैंने कहा—मैं भी यही सोच रहा हूँ, सोच रहा हूँ कि रास्ता इतना भयानक है फिर भी चलने में कष्ट क्यों नहीं हो रहा है। विश्राम भी नहीं ले रहे हैं।

रानी ने कहा—ठीक है, अपनी शक्ति कहाँ एकत्रित पड़ी है, यह हम खुद ही नहीं जान पाते।

डेढ़ मील रास्ता पार कर जिस समय गंवावाज चट्टी में आकर पहुँचे तब उस समय अन्दाज एक बज गया होगा। अब और नहीं, सामने छोटे-से झोपड़े के अन्दर आकर झोला-झंडा उतारा। रानी घोड़े से उतर गईं। साईस घोड़े को शायद कहीं दाना-पानी देने के लिए ले गया। निर्जन चट्टी, दुकानवाला भी रास्ते के नीचे रहता है। सामने रास्ते के उस पार एक झरना बह रहा है। मक्खियों से बेहद परेशानी है। उन्होंने शरीर पर से चादर खोलकर कहा—पत्थर की टेक कर चुपचाप बैठिये, मैं हाथ-मुँह धोकर आती हूँ, अगर अभी न खायेंगे तो खाने-पीने का इन्तजाम न होगा।

मुँह धोकर वह फिर सामने बैठीं, मक्खियों के उत्पात से बचने के लिए बाध्य होकर उन्होंने चादर का एक छोर [illegible] तक तान लिया। कहने लगीं—इस जगह में [illegible] पसीने आते हैं? शरीर की हालत [illegible] कुछ दिन आराम कीजिये [illegible] बैठे रहिये।

[illegible]

'ठीक ही है।' मैंने कहा—इस वक्त कितनी दूर जायेंगी ?

'चलिये ना जितना दूर भी चला जाय। नानी के पाँव मे फिर तकलीफ हो गई है, अधिक रास्ता चलने से पाँव फूल जाते हैं। चौधरी महाशय का शरीर भी खराब है।'

नाना प्रकार की बातचीत होने लगी। एक बार वह बोलीं - तीर्थ-यात्रा तो सब हो गई, उसके बाद ? आकर क्या लाभ हुआ ?

'पुण्य !'

'वह तो आपके लिए है, किन्तु मेरा क्या हुआ ?'

'आपके पाप भी तो थोड़े-बहुत कटे ही होंगे।'

'वही तो नही ! स्वदेश मे यदि आप ऐसा कहते तो आपके विरुद्ध मानहानि का दावा करती। पाप तो मैंने किये ही नही हैं !'

विस्मित होकर मैंने कहा—यह क्या, हिन्दू कुल की लड़की के पाप नहीं ! हमारे देश की प्रत्येक स्त्री की यह धारणा है कि वह पापी है, अधम है।

'वह हिन्दू कुल की लडकी है, किन्तु हिन्दू नहीं। मैं तो देख रही हूँ कि मुझे लाभ ही हुआ है, कुछ दिन कोल्हू के जुए से छुट्टी मिली है, पहाडो व वनो मे घूमने का मौका मिला है, और इस घोड़े पर सवारी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'

बातो ही बातो मे एक समय उनसे पूछ बैठा—अच्छा, आपके स्वामी कब मरे ?

'दुहाई आपकी।' कहकर वह थोडी अशान्त हो उठी—कृपाकर सहानुभूति न दिखाइये। छोटी उम्र की विधवाओ के लिए रो उठना आजकल के युवको की बुरी आदत हो गई है। देश मे विधुरो के लिए तो कही स्त्रियाँ रोती नही ? मुझे कोई दुःख नही, फिर भी दुनिया भर के लोग मेरी ओर देखकर कहते हैं, आहा ! आहा कहते ही मानो मेरी पीठ पर चाबुक पड़ता है !

'ठीक है।'

क्षेती चट्टी पार होते ही सूर्य प्राय सिर के ऊपर आ गया। इस बार रास्ता चढ़ाई का है तथा सँकड़ा है। मनुष्यो का समागम अब कही नही दिखाई देता, दोनो ओर का अरण्य घना हो गया है। दोनो ओर घने वृक्ष-लताओ से यह स्पष्ट दिखाई देनेवाला दिवालोक बीच-बीच मे छाया के अन्धकार से घिर जाता है। झिल्ली की झकार सुनाई दे रही है। जंगल के फूलो की मिली हुई गध से रास्ते की हवा कहीं-

कहीं असहनीय हो जाती है। लतावितान के छिद्रों से वासन्ती वायु रह-रहकर अपने उच्छ्वास से मर्मरित हो उठती है।

चढ़ाई पार करना बहुत कठिन है, घोड़ा थक गया है। साईस पीछे ही था, इस बार उसने सामने आकर लगाम पकड़ ली और घोड़े को खींचते-खींचते ऊपर उठने लगा। रास्ता बहुत कठोर है और टूटा-फूटा है।

'इतनी देर हो गई, नहाया-खाया नहीं, आपको निश्चय ही चलने में कष्ट हो रहा है।'

मैंने कहा—मैं भी यही सोच रहा हूं, सोच रहा हूं कि रास्ता इतना भयानक है फिर भी चलने में कष्ट क्यों नहीं हो रहा है। विश्राम भी नहीं ले रहे हैं।

रानी ने कहा—ठीक है, अपनी शक्ति कहाँ एकत्रित पड़ी है, यह हम खुद ही नहीं जान पाते।

डेढ़ मील रास्ता पार कर जिस समय गंवावाज चट्टी में आकर पहुंचे तब उस समय अन्दाज़ एक बज गया होगा। अब और नहीं, सामने छोटे-से झोपड़े के अन्दर आकर झोला-झंडा उतारा। रानी घोड़े से उतर गई। साईस घोडे को शायद कहीं दाना-पानी देने के लिए ले गया। निर्जन चट्टी, दुकानवाला भी रास्ते के नीचे रहता है। सामने रास्ते के उस पार एक झरना बह रहा है। मक्खियों से बेहद परेशानी है। उन्होंने शरीर पर से चादर खोलकर कहा—अपने को ढककर चुपचाप बैठिये, मैं हाथ-मुंह धोकर आती हूं, अगर सभी न आवेंगे तो खाने-पीने का इन्तज़ाम न होगा।

मुंह धोकर वह फिर सामने बैठी, मक्खियों के उत्पात से बचाने के लिए बाध्य होकर उन्होंने चादर का एक और हिस्सा पाँवों के ऊपर तक डाल दिया। कहने लगी—इस तरह से परदेश में परभूमि में क्या अकेले आते हैं? शरीर की हालत का तो कहना ही क्या, घर जाकर कुछ दिन आराम कीजिये, शान्त होकर बैठे रहिये।

अघोर बाबू की स्त्री के निकट विदाई का उस दिन का दृश्य मेरे मन में अब भी उसी रूप में मौजूद है, उस भयानक आघात को मैं नहीं भूला हूं : ब्रह्मचारी के साथ घनिष्ठता कैसे छिन्न-भिन्न हो गई यह भी मुझे स्पष्ट विदित है, सोच लिया है कि पथ में और किसी के साथ स्नेह-ममता के बन्धन की सृष्टि नहीं करूंगा। हृदयावेग के वेग में अनेक टूट जाते हैं।

बोला—धन्यवाद। इसके बाद खाने-पीने की व्यवस्था नहीं करेंगी?

रानी ने कहा—विलम्ब कीजिये, मैं लूँगी; किन्तु निराहार नहीं रह सकती। इतना कहकर रास्ते की ओर देखकर उन्होंने मेरे पाँवों के ऊपर से चादर उठा ली और खड़ी हो गई। नानी आ रही हैं। धूप और रास्ते की थकान से नानी का चेहरा एक दम बदल गया है।

नजदीक आकर नातिन को देखते ही वह फट पड़ी—यह भी क्या रानी, जो पैदल चलकर आ रहे हैं उनके ऊपर जरा भी रहम नहीं? घर तो चल, सबके सामने यह बात कहूँगी। इतना अन्याय, इतनी बेअदबी! यहाँ तक आने के लिए तुमको किसने कहा था? वेनी चट्टी में क्यों नहीं रुकी? यह कहते-कहते वह छप्पर के भीतर आ बैठीं—तुमको अपने साथ लाने में मेरे ऊपर भारी जिम्मेदारी है, मुझे तुझे आँखों के सामने रखना है। पराई लड़की, छोटी उम्र की, क्यों तू आई आगे-आगे? तू नहीं जानती कि, मेरे पाँवों में तकलीफ है और मैं चल नहीं सकती हूँ?

रानी चुप है, मैं नतमस्तक। समझ में आ गया कि उसका अभियोग और भय कहाँ है! थोड़ी देर में बुआ और एक वृद्धा चट्टी में आ पहुँची। बहुत देर तक तिरस्कार-तीर और व्यंग्य-बाण उस मौनमुखी नवयुवती के ऊपर बरसते रहे। धीरे-धीरे उठ कर पास की चट्टी में चला गया। भोजन की व्यवस्था में अब देर न करनी चाहिये।

करीब दो घण्टे बाद झरने के जल में बर्तन धोकर जब चट्टीवाले के पास से हिसाब लेने के लिए जा रहा था, उस समय छप्पर के भीतर से गर्दन बाहर निकाल कर रानी बोली खाना-वाना बनाया लेकिन हम लोगों से खाने के लिए एक बार भी नहीं पूछा? हमारा तो दिन उपवास में ही गया। कहकर उन्होंने एक म्लान हँसी हँसी।

नानी भी उनके साथ हँसी। मालूम हुआ कि आबहवा हलकी हो गई है। नानी की ओर देख कर मैंने कहा—आपने खाना क्यों नहीं बनाया?

उन्होंने कहा—दल-बल सब बिखर गया है। बिना चौधरी महाशय आदि के हम तो खा नहीं सकते भाई।

अपराह्न में जिस समय कालीमाटी चट्टी में आकर रुका उस समय शरतकाल के-से एक काले मेघ से बारिश झर रही थी। बादल के पार पश्चिम का आकाश लाल धूल में रक्ताभ हो उठा है, अतः बारिश देख-कर चिन्तित होने का कोई कारण नहीं। गोपालदा की मण्डली ने पीछे

हम सभी चुपचाप हँसने लगे, बूढ़ी ब्राह्मणी भी हँसी। स्नान करने का समय हो गया, तौलिया लेकर रामगंगा चला आया। पत्थर लाँघ कर नीचे उतरना होता है। थोड़ी-थोड़ी वृष्टि हो रही है।

स्नान करके सावधानी से देखते-भालते रानी उस समय वहाँ से वापस चली जा रही थी। एक जगह खड़ी होकर बोली—ओह, आप इतनी कहासुनी कर सकते हैं! देखती हूँ कि आप पूरे भलेमानस नहीं हैं। सुनिये, इस बार उन लोगों के दल को छोड़ दीजिये, चलिये हमारे साथ, एक साथ इधर-उधर फिरेंगे। और हाँ, आप वहाँ से एक घोड़ा कीजिए, समझ गये, दोनो जने घोडे पर होंगे तो ठीक होगा।

'किन्तु—'

आँखें फाडकर वह बोली—मेरी बात अवाध्य नही होगी—कहकर हँसती हुई जल्दी-जल्दी उठकर चल दी।

अमरसिंह चला गया है, आज कांडीवालो ने भी विदा ले ली। विदाई का दृश्य करुणाजनक था। तुलसी, कालीचरण, तोताराम सभी ने प्रेमपूर्वक विदा मांगी; गढवालियो की यह एक विस्मयकर सरलता है। चौधरी महाशय के काडीवाले तो जोर-जोर से रो रहे थे। रानी उन सबके लिए माता के समान जो है; उसके समान इतनी दयावती, स्नेहमयी देवी उन्हें जीवन मे कहाँ मिल सकती है। रानी के दान से उनकी झोलियाँ भर गईं। कपडे, चादर, पुराने कम्बल, बर्तन और नकद इनाम; मजूरी से ईनाम ज्यादा हो गया। उम्र मे जो सबसे छोटा कुली था, वह कुछ नही चाहता था, केवल एक अबोध शिशु की तरह रानी के आँचल में मुख छिपाकर, सिसक-सिसक कर रोने लगा। पराया जिस समय अपना होता है वह उस समय आत्मीय से भी अधिक अपना होता है। ऐसा दृश्य जीवन में कभी नही देखा था। रानी की आँखें भी सजल हो आईं। राजकुमारी और श्रमिको के बीच मे आज कोई अन्तर नही रहा। दुःख मे, दुर्योग मे, पथ-पथ मे, इन दीर्घ चालीस दिनो मे आज उन्होने जाना, वह मा उनकी अपनी मा नही है, ससार के अपार जन-अरण्य मे उनकी मा अदृश्य हो जायगी। यहाँ मुझे भी सबसे विदा लेनी पडी। बूढ़ी ब्राह्मणी के साथ विवाद के बाद गोपालदा की मडली को आज यही से त्याग देना पडा। सोचा, यदि सम्भव हुआ तो स्वदेश जाकर फिर मिलूँगा। काफी दिनो तक गोपालदा के साथ रहा हूँ, ऋषीकेश की वही बातचीत, आज उनसे बिछुड़ना बहुत अखर रहा था। खैर ठीक तीन बजे स्वामीजी और गोपालदा

को मंडलीवाले घोड़े पर माल-असबाब रखकर, मेहलचौरी छोड़कर चले गये। उस समय अपराह्न का समय था।

चौधरी महाराज ब्रजेन्द्र की मंशा देखकर ऐसा जान पड़ा कि रात मेहलचौरी में ही रात काटनी होगी, उनको कोई विशेष जल्दी नहीं है। यहाँ से रानीखेत तक के लिए अपने लिए एक घोड़ा ठीक किया है। घोड़ा ठीक करके चौधरी महाराज से जल्दी करने को कहा, तब वे वह चलने को राजी हो गये।

अतएव अब कोई कठिनाई नहीं। यात्रा शुरू करने में देर न लगी। घोड़े की पीठ पर कम्बल और झोला दबाकर, [illegible] महेन्द्रसिंह को दी—सर्दस की चाल-ढाल यथावत: 'नाइ डिस्टी' की-सी थी। उसके बाद राजा शिवाजी के क़ायदे के अनुसार सिर पर पगड़ी बाँधकर वीर पुरुष की भाँति घोड़े की पीठ पर चढ़ गया। [illegible] जीन और रस्सी की लगाम, सवार के हाथ में पेड़ की एक [illegible] । ख़ैर, इसी दशा में घोड़े को एड़ी लगाकर मैंने कहा, 'हट, हट।' घोड़ा पाँव उठाकर चलने लगा। कुछ दूर जाकर पीछे की ओर [illegible] तो रानी अपने घोड़े को हाँकती हुई, हँसती आ रही हैं। पहाड़ के एक मोड़ पर आकर हम इकट्ठा हुए। उन्होंने कहा—हम घोड़ों को दौड़ाकर अपने पीछे धूल उड़ाएँ जिससे वे देख न पाएँ, क्या राय है?

मैंने कहा—किन्तु उसके बाद?

'उसके बाद और क्या, शासन और सन्देह सिर पर भले ही चढ़े रहें, हम आगे चले जाते हैं।'

'उसके बाद?'

'यह देखा जाय कि किसका घोड़ा अच्छा है।' वह हँसी।

मैं बोला—मेरा घोड़ा ही अच्छा है।

'ख़ाक अच्छा है, उससे मेरा घोड़ा कहीं तेज़ है।'

'मेरा ख़ूब दौड़ता है।'

'दौड़ने से ही अच्छा नहीं हो जाता, जहाँ रुकेगा वहीं मरेगा।'

सूर्यदेव अस्ताचल को प्रस्थान कर रहे हैं। कहीं-कहीं पेड़ों पर वन-पक्षियों का सांध्य-कलरव शुरू हो रहा है। दक्षिण में नदी के ऊपर छाया का अन्धकार उतर रहा है। दोनों साईस पास-पास चल रहे हैं, वे बातों में मशग़ूल हैं। हम भी पास-पास चल रहे हैं।

स्वर्ग से बिदा मर्त्य-लोक का बुलावा मिला है, वहीं फिर चला जाना होगा। वही कलह-द्वन्द्व विद्वेष और मालिन्य, सामान्य और

और प्रेम, शौकीन भाईचारा तथा नगण्य आत्मीयता। फिर भी लौटना ही होगा। महाप्रस्थान के पौराणिक पथ को कर्णप्रयाग में छोड़ आये हैं, यह पथ ऐतिहासिक है, दक्षिण-पूर्व में टिहरी की सीमा मेहलचौरी होकर यह पथरेखा चली आई है वर्तमान सभ्य भारत की ओर, मानव-समाज को यह पथ स्पर्श करता है। स्वर्ग-प्रवास अनेक बीते दिनो की बात हो गई है, स्मृति और विस्मृति का एक गोधूली-प्रकाश छा गया है, कानो मे आ रहा है मर्त्य-भूमि का क्षीण कलरव, जीवन की विचित्र जटिलता हाथ से इशारा कर बुला रही है।

मेहलचौरी पीछे रह गया। चढ़ाई के रास्ते मे यात्री धीरे-धीरे उठ रहे हैं। हमारे घोडे धीरे-धीरे चल रहे हैं। साईस पीछे-पीछे आ रहे हैं। दक्षिण ओर नीचे धीरे-धीरे अन्धकार होता जा रहा है। सामने पर्वत के पार पश्चिम का आकाश लाल हो उठा है, संध्या आकर बैठ गई है अपरान्ह के आसन पर। बाईं ओर पठार पर चीड़ के जगल में मन्थर वायु बीच-बीच मे गुजन-ध्वनि करती जाती है। यहाँ का पथ पहले की अपेक्षा विस्तृत है। रानी अपने घोडे को लेकर पास ही चल रही है। एक बार बोलीं—हम ठीक चल रहे है न, भूलेंगे तो नही।

मैंने कहा—इस रास्ते मे भूल नही हो सकती, सीधा रास्ता है।

थोड़ी-थोडी बातचीत हो रही है, जिस बात को कह रहा हूँ उसे खुद भी सुन रहा हूँ, उन्हे भी यह लगा कि अपनी बात के लिए ही वह कान लगाये बैठी है। ऐसा ही होता है। जब हम अपनी बात को अपने ही कानो सुनते हैं, उस समय यह समझ लेना चाहिये कि उस कथा की अतीत वस्तु को हम उपलब्ध कर रहे हैं।

'चारो दिशाऐं कितनी सुन्दर हो उठी हैं, देखते हैं?'

चारो दिशाओ को अवश्य देखा, किन्तु वह विस्मयकर रूप बाहर का है अथवा मेरे अन्तर का ही? नारी के साथ एक रस-प्रकृति रहती है, आल्हादिनी शक्ति वह शक्ति पुरुषो मे आनन्द तथा अनुप्रेरणा का संचार करती है मन्दिर के निद्रित देवता के कानो मे जागरण-गान भरती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि नदी मे चारो ओर से गिर पड़ता है वर्षा का जल, सर्वाङ्ग मे आ जाता है वेग, उठ पडता है बाढ का ज्वार, आ जाती है सक्रियता और उस जल को लेकर नदी चल पड़ती है परम लक्ष्य की ओर। इसी शक्ति को अगरेजी मे चार्म कहते हैं।

घोडे की पीठ पर पेड़ की डाल के चाबुक से दो-एक चोटें मार रानी ने फिर कहा—पर इस बार आप पहिचाने नहीं जा रहे हैं।

'क्यो ?'

'संन्यासी हो गया है गृहस्थ। पञ्जावी धोती पहने हैं, सिर पर पगड़ी है, मालूम होता है कि इसका रंग कभी गेरुआ था। आदमियो का चेहरा वहुत जल्दी वदलता है।'

मैं वोला—केवल स्त्रियो का नहीं वदलता है। चाहे तीर्थ करें या घोड़े पर भी चढ़ें, असल मे वे...?

हम दोनो जने हँस पड़े।

'खैर जो भी हो, आजादी खूब मिली। नानी से मै वहुत डरती हूँ।'

'तिस पर भी आपने यह कहा है कि आप किसी के आधीन नही है?'

'वह नितान्त आर्थिक स्वाधीनता है .' रानी ने कहा—किन्तु आप जानते हैं कि मै किस भयानक रूप मे पराधीन हूँ?

मै चुप रहा।

'यह अवस्था होने पर भी मेरे अपमान का अन्त नही। घर के वाहर पॉव निकालना मना है, भाई-वन्धु, आत्मीयजनो के साथ वात करना भी मना है, पुस्तक समाचार-पत्र आदि पढना सभी को नापसद है— इसका क्या कारण है, जानते है?—मेरी उम्र छोटी है। इस नानी से से वहुत डरती हूँ, कारण घर लौटकर वह अच्छी वात नही कहेगी; मिथ्या वात को ही वडे रूप मे चित्रित करेंगी। यह मेरी सगी नानी नहीं मेरी मा की चाची हैं। दु ख भाई की तरह मेरा चिरसगी वन गया है।'

उनके निश्वास से वायु भारी हो गई। मुँह से कोई वात न निकल पाई, चुपचाप घोडे हॉक कर चलने लगे।

इस वार रास्ते मे पहले चढाई, उसके वाद मैदान, चलने मे कोई खास तकलीफ नही—किन्तु रास्ते मे कई मोड तथा कई जटिलताएँ हैं। कही से तो वहुत दूर तक दृष्टि जाती है और कही हम विलकुल पहाड़ के भीतरी महल मे घुस पडते हैं। हमारे दोनो घोडे शान्त और निरीह हैं, उनको हॉकना जरूरी नही, वैरागियो की तरह उदासीन होकर वे चल रहे हैं। वे जानते हैं कि हम कहॉ, कितनी दूर जाएँगे।

इन दीर्घ तेंतीस दिनो मे जिन नगण्य यात्रियो के साथ परिचय हुआ है उनके वारे मे सोच रहा हूँ। आज यदि वे मुझको देखें तो नहीं पहिचान पावेंगे। तेंतीस दिनो तक जो मनुष्य मितभाषी था, निर्लिप्त और उदासीन था, आज उसका वही चेहरा वदल गया है। जो व्यक्ति विजनी, छॉतीखाल, गुप्तकाशी, रामवाडा, उखीमठ आदि की चढाइयो को मुँह वन्द कर पार कर गया, आज वही व्यक्ति घुड़सवारी का

शौकीन बन गया है—निश्चय ही वे लोग यह सब देखकर अवाक हो जाते। उनकी धारणा के अनुसार मैं पत्थर की भूमि की तरह कठोर हूँ, बात यह है कि मेरी तरह कष्ट-सहिष्णु तथा तन्दुरुस्त यात्री इस वर्ष एक भी नहीं आया। ऐसा जान पड़ता था कि वे लोग आज अपनी आँखों से देखने पर भी यह विश्वास नहीं करेंगे कि मैं फुहारे की तरह मुखर हो गया हूँ, मेरे मन का आकाश रंगीन क्रीड़ा-स्थल बन गया है, संन्यासी का मैंने जो वेश धारण किया था वह गिर पड़ा है, एक अपरिचित नारी के साथ अरण्य-पथ मे घोड़े पर जा रहा हूँ—मेरी पूरी हो चुकी है बद्रिकाश्रम-यात्रा, शेष हो गया है तीर्थ-पथ। वे लोग विश्वास नहीं करेंगे क्योंकि संसार का नियम ही ऐसा है। हम एक सीधे माप-दण्ड से मनुष्य को नापते हैं, एक नियत घेरे मे उसको आबद्ध रखते हैं—जिसका रंग सफेद है उसको सदा सफेद ही देखना चाहते हैं। भय से, जीवन के सहज विकास को रोक कर चलना ही साधारण मनुष्य का स्वभाव है—मानव-धर्म केवल चाहता है परिपूर्ण रूप से आत्म-प्रकाश करना। जो नीति के क्रीत-दास हैं, सामाजिक रूढ़ियों के आगे जिन्होंने अपने को बेच दिया है, हृदय-धर्म को सैकड़ों कठोर बन्धनों से बाँधकर जिन्होंने जीवन को सकुचित कर दिया है, वंचित कर दिया है, वे आत्म-विकास की रीति को नहीं जानते।

मनुष्य की सहज प्रवृत्ति, प्रकृति तथा मस्तिष्क को हम तथाकथित पाप-पुण्य के विचार-दमन द्वारा उत्पीड़ित करते हैं—इस बात को कौन स्वीकार नहीं करेगा? यदि हम चाहते हैं स्वाभाविक तथा स्वास्थ्यपूर्ण जीवन बिताना, यदि हमारी इच्छा है कमल की तरह सूर्य को देखकर विकसित होना—तब आज मन्दिर, मसजिद और गिरजे के दरवाजे बन्द कर देने होंगे, बन्द कर देनी होगी धर्माध्यक्षों और नीति-प्रचारकों की वाणी—इन स्वार्थान्ध व्यक्तियों की वाणी जो अपने आदर्शों और अपनी रुचि से निर्बोध जन-साधारण को बाँध देते हैं और मूढ़ मानव-समाज को अपनी अँगुलियों के इशारे पर चलाना चाहते हैं। मनुष्य को चरित्रवान और 'गुड बॉय' बनाने के लिए इतने कार्य-क्रम हैं, यह समझ कर ही उसका मन इतना विकार-ग्रस्त हो उठता है—पृथ्वी में इसी लिए इतनी हिंसा, मारकाट तथा लोलुपता है। भारतीयों की निर्विरोध निष्क्रियता, आरामप्रियता तथा दुनिया के दरबार में युग-युग तक लांछित होने के मूल में जो वस्तु काम कर रही है, वह है इस देश के अति-मानुष तथा अ-मानुष के चरित्र की विभिन्नता। इस देश

देवता और दानवों की भीड़ है, मनुष्यों की संख्या कम है। यहाँ तो तब से अब तक देश के सर्वांग का शोषण कर अति-मानुष-दल ने खड़े किये हैं केवल सन्यासियों के निवास-स्थल। मठ, आश्रम-सत्र आदि की इतनी भीड़ इस देश में है कि कहीं भी आगे पाँव बढ़ाने को जगह नहीं मिलती। मनुष्य मर गया है। उसके बदले आ गये शिष्य, सेवक और महाजन! इनका नाम है 'रिलिजस इन्स्टीट्यूशन'। सर्वशास्त्र-पारदर्शी तथा सर्वज्ञ ये लोग! इनके इच्छा-यंत्र द्वारा ही 'गुड बॉय' तैयार होता है।

आज वे लोग मुझको देखकर विश्वास नहीं करेंगे। यह बात उनको कैसे समझाऊँगा—जाड़े के बाद वसन्त आता है, उसके बाद आती है वर्षा! कभी निगूढ़-ध्यान-तपस्या में शंकराचार्य के उत्तरधाम के पथ पर चला था—शरीर पर गेरुए वस्त्र थे, पीछे लम्बी जटा थी, साथ में थी श्मशानवासी प्रेतों की मंडली, चक्षु थे शिव-नेत्र, उत्तर की हवा के कारण दिन-प्रति-दिन मेरे हृदय के अन्दर जम गई थी बर्फ की तह—कठोर निश्चल बर्फ की मरुभूमि। उसके बाद चञ्चल वसन्त के उपवन में, मालती-मल्लिका की छाया से वेष्टित अरण्य-वीथिका में चला आया, दक्षिण पवन के दाक्षिण्य में मिल गया माधुर्य का आनन्द! अस्थिमाला के बदले आज मेरे अङ्ग-अङ्ग में लाल पलाश के गुच्छे हैं, माथे पर ऋतुराज का स्वर्ण-मुकुट है, चिता भस्म के बदले पराग है, हाथ का भृङ्ग बदल गया है बाँसुरी में—वसन्त की बाढ़ में वैराग्य बह गया है।

रानी बोली—अपनी आपबीती सुनाकर शायद आपको दुःख ही दिया।

दूर पर उस समय बिजरानी चट्टी में प्रकाश दिखाई दे रहा था। मैंने कहा—इसमें हिचकिचाहट क्यों, दुःख के घर में दुःख ही तो अतिथि बन कर आता है।

'अच्छा, यही सही।' उन्होंने हँसकर कहा—अच्छा, आपको याद है रविबाबू की वह कविता? फिर वह खुद ही अपने कोमल कंठ से बोलीं:

राजपथ दिये आसियोना तुमि, पथ भरियाछे आलोके, प्रखर आलोके।
सबार अजाना (अनजाना) हे मोर विदेशी,
तोमारे ना जेन देखे प्रतिवेशी,
हे मोर स्वपनविहारी।
तोमारे चिनिब प्राणेर पुलके,
चिनिब सजल आँखिर पलके,
चिनिब विरले (एकान्त में) नेहारि परम पुलके।
एसो प्रदोषेर छायातल दिये (अन्धकार में), एसो ना पथेर आलोके, प्रखर आलोके।

मैंने कहा—भले मानस ने अच्छा ही लिखा है। अच्छा, किन्तु इस बार मैं आगे चला जाता हूँ।

घोड़े को दौड़ने की चेष्टा की किन्तु उसे दौड़ाना इतना सहज नहीं था। चाबुक मारने से थोड़ा आगे जाता है, फिर देखते-देखते उसकी चाल मन्द पड़ जाती है। इस तरह जब चट्टी के पास आकर घोड़े से उतरा तो उस समय काफी अँधेरा हो चुका था। सामने पास-पास पत्थरो के बने दो पक्के घर हैं, उनके साथ बरामदा है, पहिली चट्टी के नीचे मिठाइयो की एक बड़ी दुकान है—तब तो रात अच्छी तरह ही कटेगी। चारो ओर भिन्न-भिन्न पेडो के जगल हैं, पीछे की तरफ थोड़ा खुला मैदान है, पथ के इस ओर पत्थरो से पटा हुआ एक झरना। मालूम होता है कि थोडी देर पहले यहाँ वर्षा की एक फुहार बरस चुकी है, सारी धरती गीली हो गई है।

चौधरी महाशय सदलबल आकर हाजिर हो गये। पहली चट्टी के दुमंजिले मे सबने आश्रय लिया। पास के घर मे उत्तर भारतीयों तथा मारवाडियो की एक मडली आ गई। घोड़ो को महेन्द्रसिंह और प्रेमवल्लभ दाना-पानी देने के लिए कही ले गये—यह बात तय हुई कि तड़के ही वह घोड़ो को लेकर हाजिर हो जायेगे। सामान खोलकर दुमजिले मे भीतर तथा बरामदे मे चौधरी महाशय वगैरह ने बिस्तर बिछाया, नीचे पूरियो की दूकान मे से जल-पान का थोडा बहुत प्रबध हुआ—रानी बालटी लेकर झरने से जल लाने गई। जिसकी उम्र छोटी होती है, परिश्रम का अधिक भाग उसी को मिलता है।

भोजन करने के बाद ही शयन। इस बीच मे बुआ के साथ किसी की कुछ खटपट हो गई, वह बिना कुछ खाये-पिये ही बरामदे के किनारे कम्बल बिछाकर सो गईं। बुआ की समस्त हँसी व रसिकता के पीछे रहता है एक विषधर साँप का फन, मनुष्य पर एकाएक चोट करना ही उसकी रीति है। किन्तु इस विलीयमान कोलाहल के बीच कमरे के मध्य मे मौन रूप मे देखने पर उस दिन मैंने जो दृश्य देखा, वह आज भी हू-बहू मुझे याद है। रानी ने जो दीक्षा ली है, सुबह और शाम वह जिस जप मे बैठती है उसको मै जानता था, लुक-छिपकर देखा भी था; किन्तु उसका रूप ऐसा है यह आज पहली बार मैं समझा। सामने लालटेन का प्रकाश है, उसी के पास आसन के ऊपर वह ध्यान मे बैठी हैं, दोनो आँखें मूँदी हुई हैं उनके मुख के ऊपर एक अपूर्व लावण्य और आभा चमक उठी है, लेकिन इतना ही नहीं—उस मुख पर एक

उत्तरभारतीय मण्डली का उकतानेवाला गाना जिसकी बार-बार दुहराई जानेवाली एक ही रट गूंगे के बोलने के समान लग रही थी, बन्द हो गया और मेरी आँखो मे तन्द्रा आ गई। सिर के पास चौधरी महाशय सोये हैं—यह अत्यन्त निष्कपट व्यक्ति हैं, उन्ही के पाँवों की ओर सोई हुई है बुआ—वह जोर से खर्राटे भर रही है। बरामदे के भीतर अन्य वृद्धाएँ हैं, कमरे के भीतर हैं नानी और रानी। रात्रि नीरव है, दो दिन पहले अमावास्या हो गई है। द्वितीया का शीर्ण चन्द्र कभी से पश्चिम आकाश मे अदृश्य हो गया है, चारो दिशाओ मे घोर अन्धकार है। आकाश के स्वच्छ तारे खूब चमक रहे हैं।

जाडे से सिकुडकर सो रहा था, न मालूम कैसे एक बार नींद टूट गई। आज चले तो हैं नही, अतएव परिश्रम भी नहीं हुआ इसी लिए गहरी नींद नही आ रही है। एक बार देखकर फिर आँखें मूँद ली। फिर नींद टूट गई। मृदु-लघु पद-शब्द को सुनकर अन्धकार मे दृष्टि फैलाये मौन होकर देखा। इतने ही में देखता हूँ कि अत्यन्त सतर्कता से एक मानव-छाया निकट आकर एक बार हिचकिचाहट से इधर-उधर देखकर फिर चली गई। कमरे के भीतर के अत्यन्त मन्द प्रकाश मे भी रानी को पहिचान लिया!

दूसरे दिन सुबह घोडा लेकर सबसे आगे चल दिया। आगे-आगे चलना ही ठीक समझा। चलते समय पीछे को भी नही देखा, आग्रह भी नही दिखाया, जाने कितना उदासीन हूँ! मध्य-रास्ते में रानी पीछे से आकर मेरे साथ हो लेगी, उसके बाद दोनो जने बातें करते चलेंगे, यह बात कोई नही जानता। तिस पर भी जिन्हे हमारा पहरा देते-देते आना है, हमे अपनी नजरो में रखना है, उनके लिए कोई उपाय नहीं क्योकि वे तो पैदल आयेगे और हम चलेंगे घोडे पर। अपने इस छल-कौशल के सम्बन्ध में आलोचना कर हम खुद ही हँसते हैं। सामाजिक मनुष्य के मन के रूप को हम जानते हैं—स्त्री-पुरुषो का मिलना-जुलना, स्वाभाविक बन्धुत्व, एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक ममता—ये सब उनको बहुत ही अखरते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पर उनकी सदा एक धारणा रही है, उसके सिवा और कुछ नही। समाज-बद्ध और सस्कार-बद्ध मन के विरुद्ध हम युद्ध-घोषणा करते, उसको रोकने के लिए हमारा आग्रह भी बढ जाता—उनके शासन, सन्देह और बन्धनो को तिरस्कार-पूर्ण भाव से ठुकराकर हम गर्व से चले जाते, वे हमारी छाया भी न पाते।

उस दिन सुबह पीछे से आकर रानी ने मुझे पकड़ लिया। फिरकर

प्रशान्त पवित्रता, सयम और सहज कृच्छ्र साधना का एक अनिर्वचनीय माधुर्य है—ऐसा ज्योतिर्मय रूप सहसा नही दिखाई पड़ता। मैं एकटक देखता रहा। एक नज़र देखकर जो किसी मनुष्य की आलोचना करने लगते हैं उनकी बात मैं नही कहता, किन्तु रानी के साथ मेरा थोड़े दिनों का परिचय है, बातचीत मे पहले, इनके सबंध में कई विरूप धारणाएँ मेरे मन में उठी थीं—वे धारणाएँ सत्य नहीं हैं। तथाकथित शिक्षित लड़कियो को मै जानता हूँ, इस समय समाज मे उनकी सख्या काफी बड़ी है; उनके चाल-चलन और आचार-व्यवहार मे कालेजी ढंग होता है, चेहरे पर पालिश होता है, चरित्र मे चटुलता, छलना भरी भंगी होती है—जानता हूँ उनकी आशा-आकांक्षा का गोपन तत्व। पहले-पहले इनकी अनर्गल हँसी, इनका बुद्धि-दीप्त वार्तालाप इनका निस्संकोच व्यवहार और इनकी सरस बातचीत स्मरण कर कभी-कभी उनके प्रति भोहे टेढ़ी हो गई थी—सोचा कि यह भी तो उन्हीं में से एक हैं, वही एक विरक्तिकर चरित्र की पुनरावृत्ति है; किन्तु नही, अब मत परिवर्तन करना पडा। वही रात्रि, वही अन्धकार, वही नाना जातीय यात्रियो की भीड़, वही लालटेन का प्रकाश, उनके बीच में बैठकर मन बोला, साधारण जनो के घर मे इसका स्थान नियुक्त न करो, उससे तो खुद तुम ही छोटे हो जाओगे। लड़की यदि तुम्हारी दृष्टि मे उच्च नही हो सकती तो कोई हानि नही लेकिन तुम्हारी आँखो के दोप से वह छोटी तो न हो जाय।

पृथ्वी मे इतनी नास्तिकता, संशयवाद और सिनिसिज्म, मन की इतनी मलिनता और चरित्र का इतना अधःपतन, साहित्य का सुलभ रोमान्टिसिज्म और शौकीन कल्पना, सत्य और न्याय के तथाकथित आदर्श के प्रति मनुष्य का इतना अविश्वास है—किन्तु तब भी जो-कुछ सद्गुण मानव चरित्र को उज्ज्वल बनाता है उसकी कद्र हमे करनी ही पड़ती है। मनुष्य जिन-जिन गुणो से महान बनता है, जहाँ वह दृढ नैतिक शक्ति का परिचय देता है, वहीं हम भी उसके आगे माथा झुकाते हैं। वहाँ तर्क भी नही होता, अविश्वास भी नही होता, वहाँ हम झुककर कहते हैं तुम साधु हो, तुम्हीं महात्मा हो।

रात में जाड़ा हुआ, किन्तु जब कम्बल के अतिरिक्त बिछाने-ओढ़ने का और कोई चारा ही नही तब उसी को लेकर बरामदे के एक कोने मे स्थान ग्रहण किया। उत्तर और दक्षिण की ओर खुला हुआ है, सर-सर करती हवा बह रही है—नीचे का गोलमाल शान्त हो गया, पास मे

उत्तरभारतीय मंडली का उकतानेवाला गाना जिसकी बार-बार दुहराई जानेवाली एक ही रट गूँगे के बोलने के समान लग रही थी, बन्द हो गया और मेरी आँखों में तन्द्रा आ गई। सिर के पास चौधरी महाशय सोये हैं—यह अत्यन्त निष्कपट व्यक्ति हैं, उन्हीं के पाँवों की ओर सोई हुई है बुआ—वह जोर से खुर्राटे भर रही है। बरामदे के भीतर अन्य वृद्धाएँ हैं, कमरे के भीतर हैं नानी और रानी। रात्रि नीरव है, दो दिन पहले अमावस्या हो गई है। द्वितीया का शीर्ण चन्द्र कभी से पश्चिम आकाश में अदृश्य हो गया है, चारों दिशाओं में घोर अन्धकार है। आकाश के स्वच्छ तारे खूब चमक रहे हैं।

जाड़े से सिकुड़कर सो रहा था, न मालूम कैसे एक बार नींद टूट गई। आज चले तो हैं नहीं, अतएव परिश्रम भी नहीं हुआ इसी लिए गहरी नींद नहीं आ रही है। एक बार देखकर फिर आँखें मूँद लीं। फिर नींद टूट गई। मृदु-लघु पद-शब्द को सुनकर अन्धकार में दृष्टि फैलाये मौन होकर देखा। इतने ही में देखता हूँ कि अत्यन्त सतर्कता से एक मानव-छाया निकट आकर एक बार हिचकिचाहट से इधर-उधर देखकर फिर चली गई। कमरे के भीतर के अत्यन्त मन्द प्रकाश में भी रानी को पहिचान लिया!

दूसरे दिन सुबह घोड़ा लेकर सबसे आगे चल दिया। आगे-आगे चलना ही ठीक समझा। चलते समय पीछे को भी नहीं देखा, आग्रह भी नहीं दिखाया, जाने कितना उदासीन हूँ! मध्य-रास्ते में रानी पीछे से आकर मेरे साथ हो लेगी, उसके बाद दोनों जने बातें करते चलेंगे, यह बात कोई नहीं जानता। तिस पर भी जिन्हें हमारा पहरा देते-देते आना है, हमें अपनी नजरों में रखना है, उनके लिए कोई उपाय नहीं क्योंकि वे तो पैदल आयेंगे और हम चलेंगे घोड़े पर। अपने इस छल-कौशल के सम्बन्ध में आलोचना कर हम खुद ही हँसते हैं। सामाजिक मनुष्य के मन के रूप को हम जानते हैं—स्त्री-पुरुषों का मिलना-जुलना, स्वाभाविक बन्धुत्व, एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक ममता—ये सब उनको बहुत ही अखरते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पर उनकी सदा एक धारणा रही है, उसके सिवा और कुछ नहीं। समाज-बद्ध और संस्कार-बद्ध मन के विरुद्ध हम युद्ध-घोषणा करते, उसको रोकने के लिए हमारा आग्रह भी बढ़ जाता - उनके शासन, सन्देह और बन्धनों को तिरस्कार-पूर्ण भाव से ठुकराकर हम गर्व से चले जाते, वे हमारी छाया भी न पाते।

उस दिन सुबह पीछे से आकर रानी ने मुझे पकड़ लिया। फिरकर

देखता हूँ तो उनकी आँखें नींद से भारी हो रही हैं, मालूम होता है कि कल रात ठीक नींद नहीं आई—मुख पर हँसी है। बोली - 'गुड मॉर्निंग' चलूँ, थोड़ा धीरे से चल बाबा, तू भी क्या अस्वाभाविक होना चाहता है ? ओ प्रेमवल्लभ, जरा निन्दु को एक बार फटकार तो सही। देखती हूँ कि घोड़ा नानी से भी बढ़कर है !

हँस पड़ा। उन्होंने कहा—कल रात कुछ अन्याय कर बैठी, आशा है आप क्षमा करेंगे।'

'क्या, कहिये तो ?'

उन्होंने सलज्ज कण्ठ से कहा - जाड़े से आप बिलकुल सिकुड़े पड़े थे, एक कम्बल देने गई थी ; किन्तु देने का साहस नहीं हुआ। दो कदम आगे चली तो तीन क़दम पीछे लौट पड़ी—रात नीरव जो थी।

चुप बना रहा। उन्होंने कहा, 'भय हुआ कि यदि सुबह आपकी आँखे देर से खुली ? लोग देखेंगे कि मेरा कम्बल आपके ऊपर पड़ा हुआ है। ओह, तब क्या जवाब दूँगी ? उससे तो यही अच्छा है कि, आपको कष्ट होता रहे, अनेक तकलीफें उठाई हैं आपने। अच्छी बात, इस कविता के टुकड़े को आप कण्ठस्थ कीजिये। बद्रीनाथ के मन्दिर मे बैठकर इसको मैंने दुहराया था" यह कहकर घोड़े की पीठ पर से उन्होंने एक कागज मेरे हाथ मे दिया।

कागज हाथ मे लिया, किन्तु वह नही रुकीं, लगाम से घोड़े को इशारा कर उन्होने अपना घोड़ा आगे दौड़ा दिया।

उस दिन का ज्योतिर्मय प्रभात। तमाम जगलो मे सूर्यदेव ने अपना ऐश्वर्य बिखेर दिया था। एक हाथ मे घोड़े की लगाम पकड़ कर और दूसरे हाथ से कागज खोलकर पढने लगा—

'मोर मरणे तोमार हबे जय।
मोर जीवने तोमार परिचय।
मोर दुख जे रांगा शतदल
आज घिरिल तोमार पदतल,
मोर आनन्द से जे मनिहार
मुकुटे तोमार बांधा रय।
मोर त्यागे तोमार हबे जय
मोर प्रेमे ज तोमार परिचय
मोर धैर्य तोमार राज-पथ,
से जे लंघिबे वन - पर्वत
मोर वीर्य तोमार जयरथ
तोमार पताका शिरे बय।'

घोसला नष्ट-भ्रष्ट हो गया है उसका आश्रय इस समय है पेड़ो-पेड़ो पर. कभी तो वह ससुराल मे रहने लगी, कभी मामा के घर मे और कभी इधर-उधर। मामा के घर मे ही अधिकतर रहने मे इस समय सुविधा थी। सुबह से लेकर रात तक उनको पानी पीने की भी फुर्सत नही रहती थी। घर-गृहस्थी का लेखा-जोखा, गोदाम का भार, बाल-बच्चो की देख-रेख, दफ्तर व स्कूल जानेवालो के लिए यथा समय भोजन का प्रबन्ध, नाना की सेवा-टहल— अर्थात् साँस लेने की भी फुर्सत नही रहती थी। उनके हाथ मे वैद्यक और होमियोपैथी चिकित्सा की भी आदत थी, अनेक लोग दवा-दारू के सम्बन्ध मे उनके पास आते। जिस गाँव मे वह रहती थी वहाँ की स्त्रियाँ दोपहर मे उनके पास आकर उनसे सिलाई सीखती, लिखने-पढ़ने का अभ्यास करती। वह उनके कपडे, शेमिज, फ्रॉक इत्यादि तैयार कर देती थी। उनके कारण घर मे कोई गडबड़ नही रहती थी, घर-द्वार वह साफ-सुथरा रखती थी। घर मे कोई बीमार हो जाय तो उसकी सेवा-सुश्रूषा का भार भी उन्ही के ऊपर आता था। तीज-त्यौहार, पूजा-अर्चना नित्य नैमित्तिक कार्य—इन सब की व्यवस्था तथा इनका आयोजन उन्हीं के हाथ मे था। ससुराल बीच-बीच मे चली जाती थी, सास उनको स्नेह की दृष्टि से देखती थी, देवर और जेठ उनका सम्मान करते थे, किन्तु वहाँ स्वार्थ की गन्ध जो थी। उनकी इच्छा थी कि रानी उनके घर मे रहे ताकि माहवारी रकम उनके हाथ मे आती रहे, किन्तु यह छिपी स्वार्थ-परता रानी की नजर से न बच सकी। जिसके द्वारा ससुराल से उनका सम्बन्ध था उसकी मृत्यु ने एक भारी अन्तर—परदे की सृष्टि कर दी।

'ससुराल मे शोषण और ननिहाल में शासन।'—रानी ने कहा—खयाल आता है कि कुछ समय पहले तक मै विलासप्रिय थी .

मुख की ओर ताकते ही वह हँसकर बोली—विधवा का विलासप्रिय होना भारी अपराध है—है न ? किन्तु वह अति सामान्य है, साफ-सुथरे कपडे पहिनने तथा केशो को सँवारने मे प्रसन्नता होना भी कोई अपराध है ? फिर भी इसी अपराध मे नाना ने एक दिन मुझे बुलाकर जिस समय अपने बालो को बिलकुल कटवा डालने के लिए मुझे बाध्य किया तीन दिन तक मै रोती रही—मेरे केश पाँवो तक लम्बे थे। जानती हूँ कि आँसू बहाना बच्चो की-सी कमजोरी है, सर्वस्व त्याग करने मे ही विधवा का जीवन उज्ज्वल होता है, यह भी मालूम है, किन्तु .

कहते-कहते वह म्लान हँसी हँसने लगी।

मासी चट्टी पार हो गई है। रास्ता मैदानी है, कहीं-कहीं गाँव के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। पेड़ों की छाया से ढका हुआ चौड़ा रास्ता है, पहाड़ों की चोटियाँ दूर-दूर चली गई हैं। ग्राम्य-प्रान्तर नीरव हैं, सरसराती हुई वासन्ती वायु बह रही है। रास्ते में अब झरने नहीं दिखाई देते, रामगंगा नदी पास ही है। वृद्धकेदार में दोपहर का भोजन कर फिर आगे चले। आजकल सुख और सौभाग्य दोनों ही मुझे प्राप्त हैं। घोड़े पर चल रहा हूँ, नानी के यहाँ पका-पकाया भात खाता हूँ, बर्तन भी नहीं माँजने पड़ते। जिस दिन दु.ख में हरिद्वार से मेरी यात्रा शुरू हुई थी, उस दिन स्वप्न में भी यह ख़याल नहीं था कि इतने आनन्द के साथ मेरी यात्रा पूरी होगी। चारू की माँ और गोपालदा वगैरह एक वेला का रास्ता आगे चले गये हैं, इच्छा होती है कि दौड़कर उनको पकड़ लूँ और अपने सौभाग्य की बात उनको सुना दूँ। गोपालदा के धैर्य और उनकी सहनशीलता से मैं वास्तव में विस्मित और मुग्ध हूँ। किन्तु एक बड़े संकोच की बात है, दिन में नानी और रानी खाना बना देती हैं, चौधरी महाशय भी प्रेम से खिलाते हैं; किन्तु खाने के दाम लेने के लिए किसी तरह राजी नहीं हैं। भोजन करते समय मैं संकुचित हो उठता हूँ। मेरे संकोच को देखकर रानी भी हिचकिचाती हैं। वह इसके लिए बड़ी सजग रहती हैं कि मेरे सम्मान को ठेस न लगने पावे।

सन्ध्या को नल चट्टी पहुँच गये। मनोरम स्थान है। पास ही में केलों का एक वन है, उसी के पूरब में छोटा एक डाकघर है, डाकघर के पास ही धर्मशाला है। कुछ दूर पर एक प्राचीन मन्दिर है, उसी के पास कई संसार-त्यागी साधुओं का आश्रम है। [illegible] इस चट्टी में आये और वहीं रात काटी।

अब वह दुस्तर पथ नहीं है, वह संकीर्ण [illegible] नहीं है—पर्वतों के समूह के बीच प्राणान्तकर चढ़ाई-उतराई नहीं है। इस समय [illegible] बहुत दूर तक दिखाई देता है, अब वही भीषण [illegible] नहीं रहती, धाराओं का वह [illegible] भर-भर शब्द नहीं सुनाई देता—इस समय स्वदेश की ओर भागे जा रहे हैं। [illegible] रानी से भेंट हुई तो वह बोली—इस बार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है [illegible] रही है। [illegible] [illegible] है।

मैंने कहा—अभी हमारे [illegible]

[illegible]

नाना अर्थ लगाने शुरू किये हैं, एक काम कीजिये, आप घोड़े पर न चढिये, पहले की भांति पैदल ही चलिये।'

'उससे क्या सुविधा होगी ?'

'सुविधा भले ही न हो, सन्देह तो नष्ट हो जायगा। अब आप घोड़े पर नहीं चढ़े।'

मैं बोला—अच्छा ऐसा ही सही।

उन्होने कहा—एक छोटी-सी बात पर उन्हे संदेह हो गया। रास्ते मे खड़े होकर आपने जो दूध मोल लेकर मेरे हाथ मे दिया था उसी बात को बुआ ने नमक-मिर्च लगाकर नानी स कहा। सौभाग्य से चौधरी महाशय वही थे, उन्होने कहा दूध मोल लेकर पिलाना कोई अपराध नहीं है। रास्ते मे सभी एक दूसरे के लिए ऐसा करते हैं। चलिये आप आगे, ओह, कहती हूँ जरा जल्दी पाँव बढ़ाइये, वे आ रहे हैं।

एक अजीब बात। मानो एक सांघातिक खेल मे हम दोनो जने उन्मत्त हो उठे हो। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि स्त्रियाँ एक-दूसरे के प्रति कितनी सजग रहती हैं, कोई किसी का विश्वास नही करती। कही की कोई एक थोड़ी जान-पहचान की बुआ! अपनी संगिनियो की चरित्र-रक्षा के लिए उसको कितनी फिक्र है। उसकी धारणा है कि अगर वह न हो तो बंगाल की बहुत-सी स्त्रियाँ चरित्र-भ्रष्टा हो जाँय। सौभाग्य से वह मौजूद थी!

रामगगा के किनारे चौखुटिया चट्टी मे आकर मैंने यह बात फैला दी कि मेरे कमर मे दर्द है, घोड़े पर अब नही चढूँगा। रानी मन ही मन हँसी। पत्तो से छाइ हुई एक कुटी मे खाने-पीने का बन्दोबस्त हुआ। पास ही मे एक गाँव है, कई दुकाने हैं—एक लोहार की दुकान मे हथौडो का कार्य चल रहा है। चट्टी के पीछे नदी के किनारे थोडी थोड़ी खेती-बाडी दिखाई दी। आज कई दिनो के बाद नहाने का मौका मिला। आबहवा गरम है। नदी की धारा पतली है, प्रावहहीन है, जल छिछला है। लेकिन जब दुकान मे साबुन मिल गया तब क्या था, नदी के किनारे बैठ कर धोती और चादर अलग कर दी। देखा तो घोड़ा, गाय और मनुष्य पास-पास नहा रहे हैं। धूप काफी तेज हो उठी है, गरम देश की ओर आ गये हैं, जरा-जरा-सी देर मे प्यास लग जाती है, परिश्रम करने की शक्ति भी कम हो गई है। थोडा रास्ता और रह गया है, दो दिन बाद ही हम रानीखेत पहुँच जायेंगे। स्नान

करके लौट कर देखता हूँ तो पीने के पानी का भारी अभाव है। मालूम हुआ कि कुछ दूर पर जमीन के अन्दर एक सूखे-से झरने में से जल टपकता है। बाल्टी लेकर धूप में चल पड़ा। उस दिन, जिस यत्न से जलचिह्नहीन सूखी नदी के पत्थर के नीचे से पीने का जल इकट्ठा कर लाया, वह बात आज भी मुझे खूब याद है। दोनो हाथो से दोनो बाल्टियाँ भरी हुई लाकर सबको खुश कर दिया। भोजन के बाद दिन में सो गये। दिवानिद्रा के रूप में ही हम नवीन उद्यम का संचय करते हैं।

सोने के बाद माल-असबाब बाँध कर यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हुई। घोड़े पर चढ़ने का नशा खत्म हो चुका है, अतएव घोड़े की पीठ पर झोला-कम्बल रखकर एक वृद्धा को उस पर चढ़ा दिया, वृद्धा सिकुड़कर बैठ गई। उस समय अपराह्न हो चुका था। निकट में ही रामगंगा का पुल; पुल पार होकर दक्षिण दिशा की ओर हम चले। समतल रास्ता है, दोनो ओर देवदार के वृक्ष हैं, खजूर और आम के पेड़ो के जंगल हैं। बाईं ओर बहुत दूर तक पहाड़ो की समतलभूमि (पठारो) पर खेत हैं। हम सभी एक साथ चल रहे हैं, रानी को एकान्त में पाने का इस समय कोई मौका नहीं मिला। आज जान-बूझकर पीछे-पीछे चल रहा हूँ। चौधरी महाशय भी पास-पास चल रहे हैं। बुआ यथा-यत्न पहरा देती हुई नानी और अन्य संगिनियों के साथ चल रही हैं। रानी की ओर उसकी कड़ी नजर है।

किन्तु विधि की दया। देखते-देखते आकाश का चेहरा बदल गया। चारो ओर से काली-काली घटाएं घिर आईं। पेड़ो के सिरों पर तूफानी हवा सरसराने लगी और फिर थोड़ी ही देर में मूसलाधार वर्षा होने लगी। पहाड़ो पर बारिश बहुत कष्टदायक होती है, जल की बूँदें तीव्र और तीक्ष्ण होती हैं। सब घबरा गये और कितने [illegible] इसका ठीक पता नहीं। किन्तु [illegible] आगे-आगे [illegible] चलने के सिवा और कोई उपाय नहीं था। पण्डों के पास [illegible]-क्लाथ (मोमजामे) की बरसातियाँ थीं—साधारणतः इसी [illegible] इस देश में घाटीवाले यात्रियों का माल-असबाब [illegible] हैं—[illegible] का दुपट्टा सिर पर रखकर नानी और [illegible] चलने लगे। रानी को भी उन्होंने [illegible]-क्लाथ दे [illegible] घोड़े की पीठ पर [illegible] पानी में भीग गया।

रहने की व्यवस्था कर दी। स्कूल को देखते ही यह समझ मे आ गया कि इसके आस-पास गांव हैं। पंडितजी आये, साथ में कई विद्यार्थी भी। आकर उन्होने देश के सबध मे नाना प्रश्न पूछने प्रारभ कर दिये कांग्रेस की कैसी अवस्था है, महात्माजी कब रिहा होंगे, धर-पकड़ अभी भी हो रही है या नही, इन प्रश्नो के द्वारा उनकी उत्सुकता और उनका उत्साह भांप कर मैं विस्मित हो उठा। सुनने में आया कि अल्मोड़ा से समय-समय पर उन्हें देश की खबरें मिलती हैं।

स्कूल के कमरे के बरामदे मे हमारा डेरा जमा। बरामदे मे फूलो के कई पेड थे; पास ही मे लड़को के खेलने के लिए थोड़ी खुली जमीन थी, पश्चिम की ओर लकडी का एक कारखाना था। बरामदे के एक ओर हम चौदह यात्रियो ने आश्रय लिया। बारिश से सब कपड़े-लत्ते व बिस्तर भीग चुके थे, खैर सौभाग्य से रास्ते मे हवा से थोड़ा उन्हे सुखा लिया था। सध्या का अन्धकार घना हो गया, दो-तीन हरीकेन लालटेने जला ली गई। यात्रियों की भीड मे रानी और नानी व्यस्त रही। आज कई दिनो बाद झोली के अन्दर से कागज और कलम निकालकर नोट लिखने बैठा। कितना रास्ता, कितनी घटनाएँ, कितनी स्मृति। जीवन की बाहरी कथा लिखी जा सकती है, किन्तु उसकी महत्वपूर्ण घड़ियो के दुख और आनन्द को भाषा द्वारा प्रगट करना कठिन कार्य है। कलम लेकर बरामदे मे एक एकान्त जगह पर बैठ तो गया लेकिन समझ मे नहीं आया कि क्या लिखूं। लिखकर प्रगट ही कितना किया जा सकता है! सध्या तो बीत चुकी किन्तु एक पंक्ति भी नोट न कर सका। इस वक्त मुझे भोजन बनना है, चौधरी महाशय मेरा पकाया खायेंगे। बरामदे के पार आते समय आज सध्या को फिर वही चमत्कारपूर्ण दृश्य देखा। जप समाप्त कर निर्वाक दृष्टि से देखती हुई रानी बैठी है हाथ मे उसके वही रुद्राक्ष की माला है। लालटेन के प्रकाश मे मेरी ओर देखा—प्रसन्नतापूर्ण बडी आंखें, स्वप्न और तन्द्रा से अभिभूत आंखे, अर्द्ध-निमीलित। जिस नारी को देखा है सारे पथ मे, जिसको देखा है घोड़े की पीठ पर, जिसके कलहास्य, कल-कंठ तथा प्राण-चांचल्य से सारा पथ चकित और मुखर हो उठा— वही मायामयी योगिनी यह नहीं है, यह तो उसकी एक आमूल परिवर्तित प्रतिकृति है। वह ऐसी बेसुध थी कि मानो उसकी आत्मा देह को अतिक्रम कर कहीं दूर चली गई हो, रानी ने मुझको नहीं पहचाना; आंखों से आगे निहारते हुए [illegible] था, किन्तु मेरा मन [illegible] ने मु

गया, मुख फेरकर उस पार जाकर नानी से बोला—आपके लिए कुछ लाना है ?

नानी बोली—हाँ भाई लाना है, दुकान मे है भूँजे चने और पेड़े। उन्हीं को ले आओ—ये नौ पैसे हैं, पेडे ही यहाँ भाग्य में लिखे हैं।

कुछ देर बाद पेडे और भूँजे हुए चने लाकर खड़े होते ही रानी ने कहा—मेरे हाथ मे दीजिये, नानी जप कर रही हैं।

उन्हीं के हाथ मे दे दिये। उन्होने हँसकर कहा – मैनी थैंक्स !

दूसरे दिन आठ बजे। द्वाराहार का छोटा पहाडी शहर पार हो गया है। दो रास्ते दो तरफ को गये हैं, एक अल्मोड़ा की ओर और दूसरा रानीखेत मे जाकर मिलता है। रानीखेत का रास्ता पकडा, पास ही मे भैरव का एक पुराना मन्दिर है। मन्दिर के पीछे विस्तीर्ण प्रान्तर, उसी की असमतल गोद मे पहाड़ी गाँव है। रास्ता धीरे-धीरे नीचे को उतरा। इतने दिनो के बाद फिर श्रमिक नर-नारी मिले है। किसी के सिर पर घास है, किसी के सिर पर लकड़ी का गट्ठा और किसी के सिर पर गेहूँ का बोझ ; कोई घोडे की पीठ पर माल-असबाब रखकर जा रहा है। हमारे दल मे कुल पाँच घोडे हैं, चार की पीठ पर यात्री हैं, एक की पीठ पर माल-असबाब है। एक कतार मे घोड़े खट-खट करते, रास्ते मे धूल उड़ाते चले जा रहे हैं। घोड़ो का जैसा साज-सरंजाम है और उनके ऊपर वृद्धाएँ जिस हास्यास्पद ढङ्ग से बैठी हुई हैं, उससे यह जान पड़ता है कि घोडे पर चढने के समान और कोई लज्जाजनक बात नहीं है। वृद्धाओ की ओर देखकर रानी की हँसी बन्द ही नहीं होती।

आज धूप तेज है, गरमी से सभी परेशान हैं। क्षण-क्षण मे गला सूख जाता है ; झरने भी नहीं, जलाशय भी नहीं। जल का कहीं नामो-निशान नहीं ! कल से ही बाकायदा पानी की तकलीफ शुरू हुई है। रूखे-सूखे, पैड़-पौदे-हीन पहाड़ हैं, छाया कहीं भी नहीं। धूल भरी गरम व के झोको से चारो ओर अन्धकार हो गया है।

पानी, पानी , पानी के बिना हम बहुत कष्ट पा रहे हैं। सब पीडाएँ .ही हैं, किन्तु पानी की तकीलफ यह पहली है। यदि कोई एक घडा पानी दे दे तब अनायास ही इस झोले-कम्बल को उसको दे सकता हूँ। चातक की तरह भारी प्यास के कारण जल के लिए चारो ओर देखने हैं, किन्तु कहीं भी जल नहीं। दस मील तक यह जल-कष्ट है।

करीब बारह बजे के समय एक दुमजिले चट्टी मे चले आये। यहाँ से दूर पहाड़ की चोटी पर रानीखेत का अस्पष्ट शहर दिखाई देता है।

चट्टी में पहुँचते ही जल के लिए दौड़ पड़ा। पास ही में कुछ खेत थे, उन्हीं में से होकर झरने की एक धारा बह रही थी। किन्तु थोड़ा विश्राम लिये बिना नहीं चला जा सकता। एक दुकान की दूसरी मंजिल में भीतर जाकर बैठ गया—चलने की बिलकुल ताकत नहीं। केवल दो-चार जन आ पाये हैं, नानी, चौधरी महाशय वगैरह कई लोग नहीं आये। मालूम होता है कि रानी ने पास बैठकर मेरी यह हालत देख ली थी। सब चुप थे। इस समय फर्श पर बिखरी अटरम-सटरम चीजों में से कुछ चीज चमकती-सी दिखाई दी, उठा कर देखा तो छोटा एक ताम्बे का पतला टुकड़ा, उसके ऊपर लक्ष्मी के दो चरण खुदे हुए थे। उसी समय उठकर मुफ्त में उसे मैंने रानी को भेंट कर दिया। लक्ष्मी के चरण-चिह्न देखकर उन्होंने सादर उसे लेकर पास में रख लिया। साधारण हो गया असाधारण।

बहुत कठिनता से जल संग्रह कर प्यास बुझाई। नानी आई, उनके साथ आई विजया दीदी रोते-रोते। क्या माजरा है? देखा तो उनके पैरों के तले बिवाई फटने से अत्यन्त पीड़ा हो रही है, अब वह चलने में असमर्थ हैं। सब झाड़-फूँक और जड़ी-बूटियाँ व्यर्थ हुईं। विजया दीदी पूर्वी बंगला भाषा में विलाप करने लगी। खाने-पीने का बन्दोबस्त होने लगा।

फिर यात्रा। विजया दीदी की अवस्था देखकर रानी ने अपना घोड़ा उन्हें दे दिया। अतएव आज रानी की पहली पैदल यात्रा है। पाँवों की व्यथा उनकी सामान्य ही है, इतना रास्ता किसी तरह चली जावेंगी। एक दिन उन्होंने पाँवों में एक जोड़ा चप्पल पहनी थीं, आज फिर पाँवों में कैनवेस का सफेद जूता पहना। इस बार रास्ते में थोड़ी-थोड़ी उतराई है इसलिए चलने में कोई कष्ट नहीं। आज सुबह से ही बातचीत करने का एक बार भी मौका नहीं मिला है, दाएँ-बाएँ सतर्क आँखें हैं, बुआ चुपचाप पहरा दे रही हैं। इस समय शासन नहीं, केवल सतर्कता है। रानी भी इसी तरह चल रही है मानो कहीं कुछ गौरव नहीं इस भाव से बातचीत करते-करते साथियों के साथ चल रही हैं, मेरी ओर ताकने की भी उन्हें फुर्सत नहीं। सब समझ गया। मैं भी अपनी उदासीनता का पालन कर आगे-आगे चल रहा हूँ मानो मैं उन्हें पहिचानता ही नहीं। रानी कौन है?

गाँव में से होकर टूटा-फूटा टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता जाता है। इसी रास्ते से [illegible]

निःश्वास फेंक कर वह फिर बोली—रास्ते के आखिरी भाग में बहुत आनन्द मिला है, सदा याद रहेगा।

चलते-चलते उन्होंने फिर कहा—पाँवों में जरा भी तकलीफ नहीं, सहज ही में इतना रास्ता चले चलती, किन्तु ऐसा करने से आपके साथ बातचीत न हो सकती ..भाग्य से घोड़ा मिल गया!

अपरान्ह की धूप मन्द हो गई है। चीड़ के पेड़ों के घने जंगल के भीतर उनका घोड़ा चल रहा है। चारों ओर एक प्रशान्त नीरवता है। समय-समय पर वायु के झोंके लग रहे हैं—उस वायु में जंगल का मर्मर शब्द नहीं है, चीड़ के वन का दीर्घ निःश्वास है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो हमारे अर्थहीन तथा अस्थायी बन्धुत्व की ओर देखकर काल का देवता करुण निःश्वास फेंक रहा हो। आज सुबह से क्षण-क्षण में विदाई का स्वर ध्वनित हो रहा है। हमने एक दूसरे के हृदय को स्पर्श किया है, उसको विच्छिन्न करने का समय आ गया है। सहज में ही हम मिले थे, सहज रूप से ही बिछुड़ने की चेष्टा में हैं। यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि हमारे बीच में एक सुस्पष्ट ममत्व-पैदा हो गया है, विदाई के समीप होने का विचार ही उस पर आघात कर रहा है। हमें ज्ञात है कि हमारे इस परिचय को इतना अधिक दृढ़ किया है उन्हीं उत्तुंग पर्वत-मालाओं ने, नदियों ने, उन्हीं वन-जंगलों ने—वह अनन्त विश्व-प्रकृति की पटभूमि न होती तो हम एक दूसरे को इस तरह एकान्त में नहीं पहिचान पाते। उन्होंने मृदुकण्ठ से कहा—आपके लिए मैंने बहुत चोरी की, किन्तु उसके कारण मेरे मन में कोई ग्लानि नहीं। आपके साथ यात्रा के कुछ अन्तिम दिन जो मैंने बिताये हैं वे मेरी जप की माला में रुद्राक्ष की तरह गुँथे रहेंगे।

सनोवर के पेड़ों के वन से सूर्यास्त की रक्तिम आभा दिखाई दे रही है। कहीं-कहीं पेड़ों पर वन-पक्षियों का कलरव सुनाई दे रहा है, उस पार पहाड़ों के शिखर पर दिनान्त की क्लान्त धूप लाल हो उठी है। उन्होंने फिर कहा—शायद जीवन में फिर दुबारा आपसे भेंट न हो, किन्तु उसके लिए मुझे दुःख नहीं है। मैं अपनी सब बातों को निस्संकोच रूप से प्रकट कर सकी हूँ, इसके लिए मुझे खुशी है—हाँ, भ्रमण-कहानी क्या आप लिखेंगे? किस पत्र में?

मैंने कहा—यदि लिखूँगा तो "भारतवर्ष" में ही लिखूँगा।

"अच्छा ही होगा, मैं "भारतवर्ष" की ग्राहक हूँ। किन्तु देखना सावधान"

दो मिनट चुप रहकर वह फिर बोली—आपसे अनुरोध है कि मेरे जीवन की सारी कथा आप प्रकाशित कर दें। आपके लेखों से यह जान सकूँगी कि मै क्या हूँ।

हँसकर मैने उत्तर दिया—सब बाते ही कम कर दूँगा, लिखूँगा सामान्य ही।

उन्होने कहा—मेरा विश्वास है कि सुन्दर रूप मे कहने से सब कुछ कहा जाता है; आप सुन्दर रूप मे लिखेंगे; केवल मेरी कथा ही नहीं, अन्य लेख भी। आपकी सब रचनाओ द्वारा एक महान जीवन को स्पर्श करने का-सा अनुभव होता है—उसके भीतर रहती है अनन्त प्रीति और ममता।

विस्मित होकर उनकी वाणी सुनता चला जा रहा हूँ। यह भी उनकी एक अभिनव मूर्ति है। वह कहने लगी—अन्याय और असत्य को मै क्षमा नहीं करता, समस्त सामाजिक मिथ्याचार, निर्लज्ज वर्वरता, मनुष्य की कुटिलता और अपमान—मेरी रचना मे इनके विरुद्ध मानो सर्वनाशकारी ध्वस का कठोर स्वर ध्वनित होता है। जो वचित हो गये है, अन्याय के विरुद्ध आवाज नही उठा सकने से जिनका सिर झुक गया है, शतकोटि बन्धनो से जकड़े रहने के कारण जो साँस नहीं ले पाते—मेरे साहित्य मे मानो उन्हीं की आत्मा की भाषा बोल उठती है। मेरी कहानियो मे जो पात्र आते-जाते है वे मानो सब विरोध और असत्य से मुक्ति पा जाते है, सब मिथ्या और सब प्रकार की लज्जा मे वे मानो महत्तर जीवन की ओर बढ पाते है।

'बगला पुस्तक तथा पत्र मैं नियमित रूप से पढ़ती हूँ।' उन्होने कहना प्रारम्भ किया—रात मे जब सब सो जाते हैं उस समय मै जागती हूँ। किन्तु पढने से हँसी ही आती है। आजकल के साहित्य तथा समाचार-पत्रो मे अन्तर नही। लेखो के भीतर से मै देखती हूँ लेखको को। उनका कैसा सकीर्ण जीवन है कैसी स्थूल दृष्टि है! परिश्रम होता है किन्तु साधना नही होती। अपने मनोभावो के साथ फिट कर अपनी खुशी के मुताबिक वे स्त्री-पुरुषो का चरित्र चित्रण करते है, इसी से वे कठपुतलियो-से हो जाते है। इनको पढने से हँसी आती है। किन्तु क्रोध तो उस समय आता है जब कि यह देखती हूँ कि इन्हीं बातो को लेकर अक्षम्य लेखकगण नाना प्रकार की कसरत तथा दाँव-पेच दिखाते हैं। जीवन मे प्रेम और वीर्य का अस्वाभाविक अभाव उनको दिखाई नही पड़ता और यही उनके साहित्य मे दुर्वल लालसा के इतिहास—

मॉरबिड मन की कुत्सित अभिव्यक्ति के रूप मे प्रगट हो जाता है।'

कमलिनी जिस प्रकार धीरे-धीरे एक-एक दल को खोलकर अन्त में पूर्ण रूप से विकसित हो उठती है, इस नारी का परिचय भी उसी प्रकार मिला। अवश्य, सब बातें उसने इस तरह गूँथ कर उस दिन नही कहीं, कुछ प्रकाश मे लाईं और कुछ अप्रकाशित ही रखी; किन्तु यही था उनका मूल वक्तव्य।

चार मील रास्ता और चलकर सध्या के समय हमने रास्ते की आखिरी चट्टी मे आकर शेष रात्रि के लिए आश्रय लिया। दूर पूर्व दिशा मे रानीखेत शहर की कई रोशनियाँ यहाँ से दिखाई देती हैं, कल सुबह वहाँ पहुँचेंगे। अगल-बगल दो पक्के घर हैं—रहने के लिए ऐसे स्थान हमें निश्चय ही कम मिले हैं; घर मे खाने-पीने के सामान की एक दुकान है। दुकान मे रात्रि के भोजन का प्रबन्ध हुआ। थोड़ी देर बाद ही चौधरी महाशय और नानी वगैरह समारोह के साथ उपस्थित हुए। आते ही किसी एक बात पर नानी और चट्टीवाले के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ, नानी बदमिजाज औरत थी—क्रोधित होकर सब चीजें और संगी-साथी लेकर पास के घर मे चली गई। मै एक चौकी पर यहीं पडा रहा। आकाश के तारों की ओर देखकर रानी की कही हुई शेष बातो पर विचार कर रहा था। शुक्लपक्ष का शीर्ण चन्द्र उस समय पहाड़ो के पश्चिम की ओर अस्त हो गया था। किन्तु मेरे मन मे कहाँ बात जमी है और कहाँ व्यथा हो रही है?

दूसरे दिन सुबह उदय होते हुए सूर्य के प्रकाश में, चीड और सनोबर के वनो मे टेढ़े-मेढ़े रास्ते से जासूस बुआ की नजरो से बचकर, गिद्धो से घिरे हुए एक श्मशान से चुपचाप खिसककर, चौधरी महाशय के साथ बातचीत करते-करते,—इतने दिनो के बाद रानीखेत के प्रकांड शहर की सीमा मे आ पहुँचे। पास ही मे गोरे सैनिको की एक छावनी है, उसके पास सरकारी दफ्तर, क्लब, बोर्डिङ्ग हाउस, डाकबंगला तथा सैनेटोरियम हैं—शहर का विविध प्रकार का साज-सामान है। चारों ओर एक बार शून्य दृष्टि से देखकर घोड़ा छोड़कर रानी बैठ गईं। मालूम होता था कि इस सुबह भी वह थकी ही हैं, बहुत थकी हुई हैं। निराशा, अवसाद तथा कारुण्य से उनकी आँखें दबी दिखाई दीं। उनको पीछे छोड़कर आगे चला गया। रास्ते पर मुड़ते ही अनन्त दुकानें बाजार, होटल, घर, फेरीवाले तथा अनगिनत लोग आते-जाते नज़र आये, उस ओर कई मोटर बसें दिखाई दीं। [illegible]

हमारे चरित्र मे मानो वही अनन्त पथ है—पथ ही पथ है। गाड़ी के भीतर बैठकर भी हम चल रहे हैं—केवल चल रहे हैं। हमारे पाँव रुक नही गये हैं। वृद्धाओं ने मोटर के भीतर स कै करना शुरू कर दिया—वे मोटर-यात्रा को सह कैसे सकती हैं ? उनके शरीर पर इस यन्त्रयान के संघात का बुरा असर पड़ा है। रानी पीछे की सीट मे बैठी हैं, मेरी बाईं ओर चौधरी महाशय हैं। गाड़ी बहुत छोटी है, ठसाठस उसमे सब लोग भरे पडे हैं। किसी के शरीर पर किसी का हाथ है, किसी के पाँवो मे किसी का पाँव फंसा हुआ है—एक बार अपना पाँव खुजलाने के लिए हाथ बढ़ाया तो किसी के हाथ को थपथपा बैठा। भीड़ के बीच मे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना कठिन है।

करीब साढे दस बजे हल्द्वानी स्टेशन आ पहुँचे। अन्तिम जेठ की प्रखर धूप मे चारो दिशाएं धाँय-धाँय कर रही हैं। ऐसा जान पडता है कि ठढे देश में से उठाकर हमें अग्नि-कुण्ड मे झोक दिया गया हो, ग्रीष्म की दोपहरी की प्रचंड आग की लपटो से सारा शरीर झुलस-सा गया। ऊंचे से एकाएक नीचे इस गरम देश मे उतरने से साँस रुक-सी जाती है, हाँफते हुए बार-बार निश्वास लेने लगे। रानी बिल्कुल मौन है, हिमालय को छोडने के बाद उनका दिल न जाने क्यों टूट गया है। जब तक कोई बडी आवश्यकता ही नही आ जाती तब तक वह नहीं बोलती हैं : एक दुकान मे एक चौकी के ऊपर वह उदासीन हो बैठी रही। माल-असबाब लेकर हम वर्ड लाल के मुसाफिरखाने मे आ गये और उस वक्त वही आराम किया। भारी निश्वास के [illegible] से शरीर की हालत खराब दिखाई देती है।

रानी ने मानो मन्त्र-बल से मेरी व्यथा जान ली। [illegible] पाकर मेरे सिर पर स्नेह से हाथ फेरकर, [illegible] लता पूर्वक अपने सिर से उसकी [illegible] [illegible] से वह बोली—ओह, मुख का [illegible] [illegible] [illegible]

मैंने [illegible] [illegible]

[illegible]

दिन भर आराम कर शाम को ६ बजे की गाड़ी में चढ़े। बालामऊ का टिकट कटाया है, नैमिषारण्य होकर जाने की इच्छा है। सब बंगालियों ने मिलकर रेल के एक कमरे पर अधिकार कर लिया है। गाड़ी तो छोटी ही है; लेकिन बड़े जोर से छक-छक आवाज करते चल रही है। ग्रीष्मकाल का लम्बा दिन समाप्त हो गया, प्रान्तर के उस पार सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये, थकी आँखों में नींद आने लगी, दूर की पर्वत मालाएँ धीरे-धीरे विलीन हो गईं। नानी, रानी तथा चौधरी महाशय चलती हुई गाड़ी में ही अपने जप में ध्यान लगा कर बैठ गये।

रात के साढ़े नौ बजे के समय सब ने बरेली स्टेशन में गाड़ी बदली और काशीवाली गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी में खूब भीड़ थी और बेहद गर्मी। अनेक प्रयत्न करने पर भी कहीं ठंडा जल नहीं मिला, सभी प्यास से छटपटा कर निराश होकर बैठ रहे। थकावट, मेहनत और गरमी की अधिकता से सभी मृतप्राय हो गये थे, गाड़ी के चलने के कारण झकझोरों से सभी सहज में ऊँघने लगे। और कहीं कोई चूँ भी नहीं कर रहा है। खिड़की के पास सिर झुकाकर रानी भी ऊँघने लगी। मैं ऊपर सीट में चला गया।

ठीक समय पर एकाएक नींद टूट गई। रात के ढाई बज गये हैं। सभी घोर निद्रा में अचेत पड़े हैं नीचे उतर कर देखता हूँ तो सजग दृष्टि से देखती हुई रानी बैठी है। उनकी आँखों में नींद नहीं, मानो नींद कभी थी ही नहीं। बाहर अन्धकार की ओर देखकर पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी थी।

मैंने कहा—क्या बालामऊ पार हो गया है? रानी आँखें उठाकर कुछ देर तक मेरी ओर देखती रही, उसके बाद मृदु कण्ठ से बोली—यदि पार भी हो गया है तो उससे क्या, बालामऊ में आप नहीं उतरेंगे।

'क्यों?'

निद्रित नानी की ओर देखकर वह धमकाकर बोली—घर नहीं लौटोगे? काशी से आये हैं, काशी ही चलिये। और तीर्थ-भ्रमण की जरूरत नहीं है, पर्याप्त तीर्थ-यात्रा हो चुकी है।

मैंने कहा—किन्तु मेरा टिकट तो बालामऊ का ही है?

उन्होंने उत्तर दिया—रास्ते में बदल लीजिये।

चुप बैठा रहा। वह मानो फिर चिन्ता-सागर में डूब गई। किन्तु थोड़ी देर ही के लिए, उसके बाद ही मेरी ओर उज्ज्वल चक्षुओं से देखकर बोली – इससे ही क्या? यह भी तो मिथ्या है, अर्थ-हीन है! आप

क्या कुछ विश्वास करते हैं ? इस लोक मे ? परलोक मे ? पुनर्जन्म मे ?

उनके प्रश्नो का उत्तर देना सभव नही था। द्रुतगामी ट्रेन के बाहर घनी अँधेरी रात भी उनके प्रश्नो के प्रति निरुत्तर ही रही।
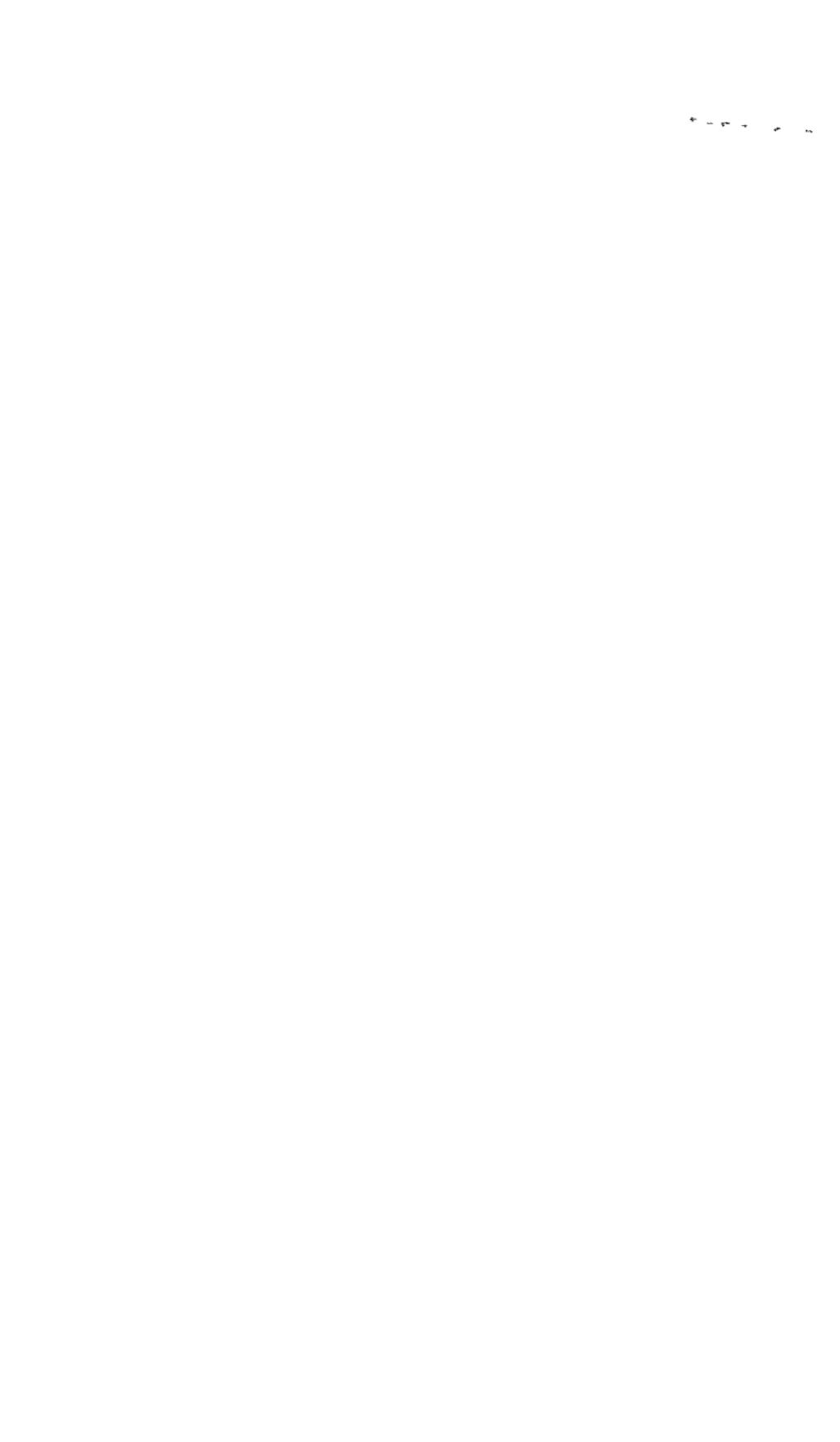
देखते-देखते गाड़ी बालामऊ स्टेशन मे आकर रुक पड़ी। रात के तीन बज चुके थे। उतरा तो नही ; किन्तु गाड़ी की झकझोर से सभी जाग उठे। नानी ने उठकर पूछा—क्यों भाई तुम यहाँ नही उतरे ?

मैने कहा—नानी जाने भी दो, इस यात्रा मे नैमिषारण्य नहीं देखा जा सकेगा।

'खैर ठीक ही है, इतने परिश्रम के बाद.. अरे बैठे-बैठे ही तू खुर्राटे भर रही है, क्यो रानी ? अहा, बिलकुल नींद मे बेहोश है—दो दिनो से खाना-पीना भी तो नही हुआ ..

निद्रा का ऐसा चमत्कारपूर्ण त्रुटि-रहित अभिनय देखकर हँसी से पेट फूल उठा। रानी यह नही जतलाना चाहती थी कि वह अब तक जगी हुई थी।

सुबह लखनऊ पहुँचे। पैसेंजर गाड़ी से जाने मे बहुत देर होगी, इसलिए लखनऊ मे गाड़ी बदलने के लिए फिर उतर पडे। बहुत समय है – झोला-कम्बल रखकर स्टेशन के रेस्टोरां में चाय पीकर बाहर आया और एक ताँगा किराया कर शहर घूमने चल दिया। प्रभात के प्रकाश मे सुन्दर लखनऊ नगरी उस समय अपनी आँखे खोल रही थी। रास्ता, दुकान, बाजार आदि पार कर नवाबो के महलो के बीच से होती हुई गाड़ी चली। पुराना किला, ऐतिहासिक भग्नावशेष, लाट साहब की कोठी, मैदान, गोमती नदी, उस पार विश्वविद्यालय—सबके ऊपर नजर डाल कर दो घण्टे बाद बाजार से एक जोड़ा स्लीपर खरीद कर फिर स्टेशन आ गया। देहरादून एक्सप्रेस आने मे उस समय देर नही थी। गाड़ी आ गई, माल-असबाब लेकर सभी गाड़ी मे चढ़ गये, गाड़ी मे चढ़ते वक्त फटे हुए सफेद कैनवेस के जूतो को लखनऊ स्टेशन को उपहार मे दे आया। दुस्तर हिमालय के विचित्र इतिहास और अनन्त स्मृति को लेकर अनाहत वे रास्ते के किनारे पड़े रहे। कंकड़-पत्थर मे, बर्फ मे वर्षा मे इन्ही जूतो ने भाई की भाँति मेरा साथ दिया था। मेरे पाँवो के नीचे आश्रय देकर मुझे विपत्ति और दुरवस्था से बचाया। जूतो के इस जोड़े को रास्ते के ऊपर फेंक कर [illegible] पश्चात्ताप से मैने उसका [illegible] [illegible] दिया है। [illegible] मानो वह जोड़ा [illegible] [illegible] नेत्रो से एकटक बहुत दूर तक मेरी ओर देखता रहा।

'सुफल'

अब यह आखिरी बात कहकर इस पुस्तक को समाप्त कर देता हूँ। दिन चले जाते हैं—वर्ष के बाद नया वर्ष आ गया। मानव-समाज के किनारे-किनारे अकेला आ-जा रहा हूँ। वह पथ अभी भी पार न हो सका; उसका अन्त नहीं, विच्छेद नहीं; जिनको मैं अपने पास ही रखना चाहता हूँ उनको छू भी नहीं सकता—बीच मे भारी पर्दा है। जिनको दूर फेक आया था वे दूर चले गये हैं; मन कहता है, तीर्थ-यात्रा तो की है लेकिन 'सुफल' क्या मिला?—पाया तो कुछ नहीं, किन्तु बहुत कुछ गया है। उस अनन्त पथ के किनारे-किनारे जीवन का बहुत पाथेय फेक आया हूँ—बन्धुत्व, प्रेम, वात्सल्य, माया और मोह। पुण्य-सचय करने को जाकर और सब संचयो को उत्सर्ग कर आया हूँ। लोभ, लालसा, कामना—ये हाथ बढ़ाकर चलते हैं किन्तु पहुँच नहीं सकते। विद्वेष बुद्धि, विषय-लिप्सा, आत्मपरता और दम्भ—ये भी यदि एक-एक कर विदा ले लें तो मनुष्य बचे कैसे?

कहीं भी जाने के लिए पाँव बढाने पर महाप्रस्थान का वही पथ रास्ता रोक लेता है। वही दुर्गम और दुस्तर, वही आदि-अन्त-हीन अविच्छिन्न पथ-रेखा मेरे जागरण मे, स्वप्न मे, आहार-विहार में, कल्पना मे और रचना मे, मेरे सब कर्मों मे और आराम मे साँप की तरह पुकार उठती है, नियति की भाँति वह सदा मुझे खींचती रहती है, रास्ता भुलाकर अपने ही पथ से ले जाती है। इसी पथ-रेखा ने मुझ को रिक्त और कङ्काल बना दिया है, तब भी तृष्णार्त जिह्वा खोलकर व्याकुल बाहु फैलाकर कहती है, 'और दो, मेरी भूख नहीं मिटी है। चले आओ, दौड़कर चले आओ, अपने सब बन्धनों को तोड़कर चले आओ।'

आज वे कहाँ गये जो मेरे लिए सबकी अपेक्षा अधिक आत्मीय थे? आज अपने सगे सम्बन्धियों को नहीं पहिचान सकता, बीच में अपरि-चय का भारी पुल है। जिनके पास बैठता हूँ, निकट में रहता हूँ, जिनको दोनों हाथों के बीच पकड़ रखता हूँ, वे भी मानो बहुत दूर हैं, हाँफते-हाँफते दौड़कर भी मानो उनको नहीं पकड़ सकता, वे मानो स्मृति की सीमा से बाहर चले गये हैं। [illegible] [illegible] के पानी का [illegible] [illegible] के स्वरों पर—ऐसा जान पड़ता है कि [illegible] दूसरे के [illegible] [illegible] हैं, मानो अब नहीं चल सकता, उन तक नहीं पहुँच सकता।

[illegible]

[illegible]

[illegible] पराये हैं, कहीं भी आत्मीयता का बन्धन नहीं है। पथ का परिचय पथ के समाप्त होने पर ही खतम हो गया। भीड़ के बीच में [illegible] कुछ कहानी-सी दिखाई दी, किन्तु सुनने का मौका नहीं मिला, उनका काण्ड भी खत्म हो गया। खत्म हो गया सदा के लिए!

धूप में निर्जन पथ पर थका हुआ मैं एक इक्के में चल रहा हूँ, इक्का बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा है, घोड़े के गले में रुन-झुन रुन-झुन घुँघरू बज रहे हैं। उत्साहहीन, निरानन्द, निःस्पृह! मैं निद्रित हूँ या जाग्रत? कहाँ चल रहा हूँ, कौन रास्ते को देखना रह गया है? कौन रास्ते से होकर चला गया? मन की दशा श्मशान की तरह क्यों हो उठी है? इतनी बड़ी तीर्थ-यात्रा में आनन्द क्यों नहीं? मैं चिर परिव्राजक चिर पथिक जो हूँ! तब क्या सब मिथ्या है, सब अर्थहीन है? परलोक, पुनर्जन्म—तब क्या जीवन में विश्वास नहीं, मरण में सांत्वना नहीं?

अर्द्धनिमीलित चक्षुओं से दूर धूप की ज्वाला से आच्छादित आकाश की ओर ताककर बोला—

'कोथा बसे विधि काँटा फिरिले आरन नीड़े
हे आमार पाखी,
ओरे इष्ट, ओरे श्रान्त, कोथा तोर बाजे व्यथा,
कोथा तोरे राखि ?'

'सुफल'

अब यह आखिरी बात कहकर इस पुस्तक को समाप्त कर देता हूँ। दिन चले जाते हैं—वर्ष के बाद नया वर्ष आ गया। मानव-समाज के किनारे-किनारे अकेला आ-जा रहा हूँ। वह पथ अभी भी पार न हो सका; उसका अन्त नहीं, विच्छेद नहीं; जिनको मैं अपने पास ही रखना चाहता हूँ उनको छू भी नहीं सकता—बीच में भारी पर्दा है। जिनको दूर फेंक आया था वे दूर चले गये हैं: मन कहता है, तीर्थ-यात्रा तो की है लेकिन 'सुफल' क्या मिला?—पाया तो कुछ नहीं, किन्तु बहुत कुछ गया है। उस अनन्त पथ के किनारे-किनारे जीवन का बहुत पाथेय फेंक आया हूँ—बन्धुत्व, प्रेम, वात्सल्य, माया और मोह। पुण्य-सञ्चय करने को जाकर और सब सञ्चयों को उत्सर्ग कर आया हूँ। लोभ, लालसा, कामना—ये हाथ बढ़ाकर चलते हैं किन्तु पहुँच नहीं सकते। विक्षेप बुद्धि, विषय-लिप्सा, आत्मपरता और दम्भ—ये भी यदि एक-एक कर विदा ले लें तो मनुष्य बचे कैसे?

कहीं भी जाने के लिए पाँव बढ़ाने पर महाप्रस्थान का वही पथ रास्ता रोक लेता है। वही दुर्गम और दुस्तर, वही आदि-अन्त-हीन अविच्छिन्न पथ-रेखा मेरे जागरण में, स्वप्न में, आहार-विहार में कल्पना में और रचना में, मेरे सब कर्मों में और आराम में [illegible] पुकार उठती है, [illegible]

[illegible]

दीवालों से घिरे क्षुद्र कक्ष के मन्द दीपालोक में बैठकर सोच रहा हूँ कि उस दिन जो संगी-साथी थे उन्होंने भी मेरी तरह इस तरह अभिशाप 'सुफल' संचय किया है, वे भी क्या मेरी तरह संसार के अकिंचन कर सुख-दुःखों के मध्य नहीं लौट सकते ? वे भी क्या रास्ते में प्रेतों की तरह घूमते-फिरते हैं।

अतीत की स्मृति के पीछे है एक सकरुण वेदना, मैंने एक दीर्घ साँस ली। जो दुर्गम के साथी थे वे आज सभी अच्छे लग रहे हैं। वहाँ ऐश्वर्य और सौभाग्य के नाना आडम्बर हैं, वहाँ जबर्दस्त प्रतियोगिता है, हम यहाँ सभी परस्पर विच्छिन्न हैं—किन्तु दुःख के दुस्तर तीर्थ में हमारे बीच कोई अन्तर नहीं—वहाँ राजा और रङ्क भाई-भाई हैं, दुःख के उस नरक-कुण्ड में छूत-अछूत का कोई भेद नहीं है।

बहुत दिनों बाद शाह-नगर के एक पथ पर गोपालदा से भेंट हुई।

'गोपालदा कैसे हो ? सब अच्छे तो हैं ?'

'अच्छे, तुम ?'

और उत्तर न दे सका।

'यही मेरी खिलौनों की दुकान है भाई। थोड़ा तम्बाकू ही सही।'

किन्तु इतना ही, उसके बाद बातचीत समाप्त ही नहीं हो पाती थी, आज उसका कितना उल्टा है, बीच में आज अपार विच्छेद हो गया है, हम फिर एक दूसरे के निकट नहीं आ सकते। तम्बाकू सुलग रहा था, उन्होंने उसके चक्राकार धुँए की ओर देखते-देखते एक बार कहा—सोचता हूँ कि इस साल फिर जाऊँगा—फिर वहीं भाग जाऊँ!

मौखिक सौजन्य के बाद दुकान से उठकर चला आया। दिन के बाद दिन चले जाते हैं।

श्याम बाजार के रास्ते जाते हुए एक बार पीछे से कानों में आवाज आई—दादा ठाकुर कैसे हो ?

मुँह फेरकर देखा तो एक स्त्री-जन। चुपचाप देखता रहा।

'नहीं पहिचान पाये, मैं वही भुवनदासी हूँ।' साष्टांग प्रणाम कर वह फिर बोली—आपकी दया का आग्रह कभी भूल सकती हूँ, आपके ही कारण तो मा-गोसाईं के हाड़ घर को वापस लौट सके! सेठ के बाग से कभी अपने चरणों की धूल माथे पर रखने का अवसर देना, दादा ठाकुर। पास ही है, उल्टाडिंगी में।

और इधर-उधर की चर्चा के बाद उसने विदा ली। यह उस दिन मेरी दृष्टि में अत्यन्त विचित्र, रहस्यमय मानव-प्राणी, अपार्थिव और

अलौकिक, युग-युगान्तर के जन्म-मृत्यु चक्र से पार हुआ तीर्थ-यात्री, दूर आकाश के किसी ऐसे ग्रहलोक के जीव के समान जिसका अभी वैज्ञानिकों ने आविष्कार ही नहीं किया हो, के समान दिखाई दी—शहरी सभ्यता के कोलाहल के मध्य खड़े होकर इसको पहिचानना बहुत ही कठिन है। यदि हिमालय के पर्वत-शिखरों, बरफ की नदियों के किनारे, घने वनों की निस्तब्धता, प्राणान्तकर पथ के पीड़न में इनको फिर से न देखा जाय तो इनको पूर्ण रूप से नहीं पहचाना जा सकता।

महानगर के राजपथ पर सरपट चला जाता हूँ। रास्ते में लोगों की भीड़ मिलती है, बोलने की इच्छा होती है, मुझको क्या तुम लोग नहीं पहिचानते, मैं वही तो हूँ? मुझमें क्या परिवर्तन हो गया है? क्यों सभी को नहीं समझ सकता। यह हृदय कठोर क्यों हो गया?

कहानी लिखता हूँ, उपन्यास लिखता हूँ, किन्तु उनके भीतर से छिपकर मानव-जीवन का यह प्रश्न बोल उठता है—जीवन क्या साहित्य से बड़ा नहीं है? क्या मानव-यात्री स्वर्ग-राज्य की प्रतिष्ठा की कल्पना में एक दिन तीर्थ-यात्रा नहीं करेंगे? क्या परम आशा की वाणी उनके कानों में नहीं गूंजेगी? उच्च जीवन, निष्पाप प्रेम, अकलङ्क मनुष्यत्व, दाक्षिण्यमय जीवप्रीति—ये क्या उस अलौकिक तीर्थ-पथ के पाथेय नहीं बनेंगे?

गेरुए वस्त्र तो छूट गये हैं किन्तु वैराग्य छूटना नहीं चाहता। वह वैराग्य महाप्रस्थान के पथ की धूल से धूसरित है। वह वैराग्य इस लोक, परलोक, पुनर्जन्म सभी प्रश्नों के ऊपर उठ गया है। उसके चारों ओर ईश्वर नहीं, सृष्टि नहीं, जन्म-जरा-मृत्यु नहीं, उसका पथ तो चिररात्रि-चिरदिन पार कर लोक-लोकान्तर की ओर चला गया है। वह मृत्युलोक को पार कर जायगा, गृह-नक्षत्र-सौर-जगत के पार चला जायगा, महाकाश के सीमाहीन प्रकाश-समुद्र को पार कर कभी वह स्वर्गलोक पहुँच जायेगा।

'जा किछू पेयेछि, जाहा किछू गेलो चूके,
चलिते-चलिते पिछे जा रहिलो पड़े
जे मणि दुलिल जे व्यथा बिंधल बुके
छाया हये जाहा मिलाय दिगन्तरे;
जीवनेर धन किछुई जावे ना फेला,
धूलाय तादेर जत होक अवहेला
पूर्णेर पद-परश तादेर परे।'

इस पुस्तक पर कुछ सम्मतियाँ

'तुम्हारे यात्रा-वर्णन में यह बात बराबर दिखाई देती है कि तीर्थ यात्रा पथ में देवतागण तुम्हारे चित्त को आच्छन्न नहीं कर सके और सहयात्रियों के प्रति तुम्हारा मुख सदा खुला रहा।'

—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

'आपने तीर्थ-भ्रमण का जो एक वास्तविक चित्र आँका है, मालूम होता है इसी के फल स्वरूप आपका यात्रा-वृत्तान्त रस-साहित्य में रूपान्तरित हो गया है। .'राधारानी' के लिए मुझे सचमुच बड़ा दुःख हुआ है और आपके ऊपर क्रोध आ रहा है—आपकी हृदयहीनता के लिए

'रानी' का जो चित्र आपने खींचा है वह जैसा सुन्दर है, वैसा ही हृदयग्राही भी बना है। पुस्तक समाप्त करने पर, और पाठकों की तरह मुझे भी रानी के सम्बन्ध में और भी जानने की इच्छा हुई।...'

—सुभाषचन्द्र बोस

'हम हिन्दुओं के लिए हिमालय केवल एक विराट पर्वत नहीं है, उसके साथ एक विराट idea है और विराट idea का आकर्षण एक बड़े चुम्बक के आकर्षण के समान है।

यह पुस्तक कहानी भी है। और यह कहानी है उनके सहयात्रियों की कहानी।...लेखक ने थोड़े से ही शब्दों में इनके चित्र खींचे हैं फिर भी इनमें से प्रत्येक जीवित मनुष्य हो उठे हैं।

. इस 'कहानी' की केन्द्र है रानी जो साहित्य की एक अपूर्व सृष्टि है।.. रानी के अन्तर में हमें वही निर्मल उदार आकाश दिखाई देता है जो महाप्रस्थान के पथ पर, यात्रियों के चारों ओर विराजमान था।'

—प्रमथ चौधरी

'यात्रा सम्बन्धी अन्य पुस्तकों के समान यह पुस्तक नहीं है। सच पूछिये तो यह एक ऐसे बेचैन नवयुवक के निर्माणकारी मस्तिष्क की पठनीय कृति है जिसको 'अज्ञात का आकर्षण' हिमालय को खींच ले गया।.

बँगला साहित्याकाश में श्री सान्याल एक उदीयमान सितारे हैं और यह पुस्तक निश्चय ही उन्हें प्रसिद्ध आधुनिक लेखकों की श्रेणी में रखती है।. पुस्तक की भाषा और शैली सजीव हैं जो लेखक की अपनी हैं। प्रकृति की विभिन्न छटाओं का उन्होंने अद्भुत चित्रण किया है। पाठक पढ़ते-पढ़ते नहीं अघाता।

पुस्तक की एक बड़ी विशेषता इसका कथानक आधार है।. थोड़े से ही शब्दों में चरित्र-चित्रण करने में लेखक ने कमाल हासिल किया है।. राधारानी जो स्नेह, ममता, दया तथा दाक्षिण्य की प्रतिमूर्ति है, सुन्दर चित्र है। दूसरा चित्र जो पुस्तक समाप्त करने पर भी हमारी आँखों के आगे से नहीं हटता रानी है। यह सुसंस्कृत, प्राणपूर्ण विदुषी विद्युत धारा से भरे हुए एक तार के समान इस यात्रा-वर्णन को प्रबल जीवन-स्पन्दन से भर देती है। वास्तव में, वह बँगला साहित्य में अत्यधिक आकर्षक तथा आश्चर्यजनक चरित्रों में से एक है।'

—'अमृतबाजार पत्रिका'